# भूमिका

श्रीमती कामिनी अग्रवाल एक सफल और समर्थ प्रधानाध्यापिका तो रही ही हैं और इस क्षेत्र में इन्होंने राष्ट्रीय स्तर का 'राष्ट्रपति-प्रदत्त सम्मान' भी प्राप्त किया है, किन्तु यह इनका वह व्यक्तित्व है जिसे हम सामान्य रूप से ही देखते और जानते हैं। अत्यंत कठोर अनुशासन, संस्था का आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और बौद्धिक संरक्षण तथा सम्बर्द्धन में निष्णात होने के साथ ही ये एक ऐसा आन्तरिक भावुक संवेदनशील सह चिन्तनशील प्रज्ञा भी रखती हैं जिसे अपूर्व वस्तु की प्रस्तुति में सक्षम माना जाता है। प्रस्तुत पुस्तक **'आधी दुनिया की धमक'** श्रीमती अग्रवाल के ऐसे ही चिन्तनशील मस्तिष्क की देन है जो सतत प्रवहमान एक ऐसी धारा है, बुद्धि की विमलता की ऐसी सरस्वती है जो अबतक प्रच्छन्न रहकर ही जीवन और समाज के बरक्स चलती रही।

पुस्तकीय ज्ञान मात्र हमें विद्वान बनाता है। इस ज्ञान के रथ में जब अनुभव और कर्मण्यता के घोड़े जुत जाते हैं तो व्यक्ति की रचना कालभेदी हो जाती है। इसमें लेखिका ने वैदिक युग से लेकर इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक के अन्त तक की सूचनाओं,

घटनाओं, प्रवृत्तियों और महिलाओं के संदर्भ में राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक और पारिवारिक परिपेक्ष्य को उपन्यस्त किया है। निश्चित रूप से 'इक्कीसवीं सदी' नारी-शक्ति के अभ्युदय का ही नहीं बल्कि शिखर-आरोहण का युग है। यह शब्द भी आज बहुत प्रचलित और बहुकथित हो चला है, वह 1980 के दशक से ही आरंभ हुआ था। यह शब्द है नारी-सशक्तीकरण। मुझे थोड़ा आश्चर्य अवश्य इस बात से होता है कि नारी के लिए इस संज्ञा-युक्त विशेषण की क्या आवश्यकता थी ? हमारे वाङ्मय में नारी हमेशा अभ्यर्थना और सम्मान का पात्र रही है। हाँ, अंग्रेजों के आगमन के बाद से हम अपनी संस्कृति अवश्य भूल गये थे और 'Ladies first' का मुहाबरा प्राप्त किया था, जिस आलोक में यह नया ज्ञान भी प्राप्त किया था कि 'अंग्रेज ही अपनी नारियों का सम्मान करना जानते हैं।' यह बात है भी। ये अपनी नारियों का सम्मान करना, उनके लिये जान देना भी जानते होंगे लेकिन सामान्य नारी के प्रति वे केवल अपमान और तुच्छता का ही भाव रखते थे। आभिजात्य नारियाँ ही उनके ड्राइंग रूम और डाइनिंग रूम में औपचारिक सम्मान प्राप्त कर पाती थीं। हमारे यहाँ नारी को विश्व-रूपा-नारी, महाकाली और ज्योति के पुँज के रूप में देखा गया है। अंग्रेजी कहावत के अनुसार मानें तो यह सशक्तीकरण भी कोई नया नहीं है। हमारे यहाँ देश और समाज में पहले मातृ-सत्ता ही प्रतिष्ठित थी। नारियाँ ही शिकार करती थीं, अग्रगामी रहती थीं और पुरुष मारे गये शिकार को ढोकर लाते मात्र थे। अत: यह कहना अनुचित नहीं होगा कि 'History repeats itself' के तर्ज पर यहाँ मानवीय इतिहास ने ही अपनी दूसरी करवट बदली है।

वैसे भी जिस नारी-यातना, नारी-उत्पीड़न आदि की बातें हम करते हैं, वे पशुवत लोग ही अथवा पशुवत समाज ही करता आया



है। किसी पढ़े-लिखे बलात्कारी को हम सभ्य और शिष्ट तो नहीं कह सकते? यह अलग बात है कि इधर समाज में बौद्धिक और सुसभ्य श्रेणी में आनेवाले लोगों ने भी नारियों के साथ अपव्यवहार किया है। लेकिन ऐसी घटनाएँ व्यक्ति-विशेष के भीतर के पशु का तो इजहार करती हैं, नारी को कहीं से अशक्त अथवा मजबूर सिद्ध नहीं करतीं। नारी निश्चित रूप से आज से ही नहीं, हमेशा से हमारे यहाँ शक्ति रूपा मानी, देखी और बरती गई हैं। इस 'शक्ति' में कुछ चालाक लोगों द्वारा 'स' उपसर्ग और 'करण' प्रत्यय लगा देने से ही यह बात सिद्ध नहीं हो जाती कि वे चालाक लोग ही नारी को सशक्त बना सकते हैं। किसी कवि का कथन याद आता है–**''हे नारि ! हृदय से नमस्कार, जीवन का स्रोत बहाती हो/काली चण्डी दुर्गा बनकर, शोणित से नित्य नहाती हो।/किसने तुझको अबला माना, माना किसने दुर्बलता है/तू ही करती संहार और तुझमें ही जीवन पलता है।''**

हमें 'दुर्गासप्तसती' के इस मंत्र को भी नहीं भूलना चाहिए जिसमें यह कहा गया है कि बिना शक्ति के शिव भी शव हैं–**'बिना शक्ति महेशेन शरीराणि शव रूपकः'** वैसे भी नारी 'वामाङिनी' कही जाती है। बाम मस्तिष्क ही संवेदना और सृजनशीलता का उत्स माना जाता है। 'शिव' से ह्रस्व इकार निकाल लिया जाय तो यह शब्द भी 'शव' बन जाएगा। यह 'ि' ही नारी शक्ति, ऋण शक्ति और बाम शक्ति है जो सृष्टि को चालन करने में समर्थ होती है। अतएव श्रीमती अग्रवाल ने यह 'आधी दुनिया की धमक' जो सुनाई है वह ऐसी श्रुति है जो अमर होगी।

इसमें पहला निबंध 'आधी दुनिया : एक महाशक्ति' है। इस निबंध में इन्होंने बड़े करीने से क्रमशः यह सिद्ध किया है कि नारी 'आधी दुनिया' की हकदार ही नहीं उसकी शिक्षिका भी है। उपनिषद्

आदि की पंक्तियों को उद्धृत करते हुए इन्होंने यह दिखाने की चेष्टा की है कि स्त्री और पुरुष वस्तुतः एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। ऐसी सोच लेखिका की समन्वयवादी दृष्टि को तो स्पष्ट करती ही है, साथ ही यह भी स्पष्ट करती है कि वे विवाद में विश्वास न रखकर 'संवाद' में विश्वास रखती हैं।

'बदलता परिवेश : नारी संदेश' दूसरा निबंध है जिसमें लेखिका ने इक्कीसवीं सदी में शिक्षा और नारी की सोच तथा कार्य में बदलाव को चिह्नित किया है। इस निबंध में भी इन्होंने बड़ी ही कुशलता के साथ यह दर्शाया है कि नारी में यह बदलाव नहीं है बल्कि प्रगति है। युग, समाज और वातावरण के अनुसार यदि व्यक्ति गति नहीं करे तो वह हास्यास्पद बनता है। किसी दार्शनिक का कथन है–'One who stands for the change of society is a great man, one who stands for a national change is greater one, One who stands for changing oneself is, but the greatest.' यह सच है कि आज की नारी ने यही किया है, अपने को आगे बढ़ाया है और यही इस निबंध में लेखिका ने दर्शाया भी है।

तीसरा निबंध 'पर्दे का टूटता तिलस्म' इतिहास, साहित्य और व्यंग्य तीनों को एक साथ करता हुआ यह भी प्रकट करता है कि लेखिका अत्यंत भावनाशील हैं। इसमें इन्होंने एक अच्छे शेर का भी प्रयोग किया है जो पाठकों का मनोरंजन भी करेगा।

चौथे निबंध 'संस्कृति-स्वास्थ्य' में लेखिका ने नारी मात्र को संस्कृति का स्वास्थ्य माना है। नारी स्वस्थ तो संस्कृति स्वस्थ। प्रेमचंद की बात याद आती है–'अगर पुरुष में नारी के सारे गुण आ जायें तो वह अत्यंत सदाचारी बन जाये।'

'महिलायें और मानवाधिकार' नामक पाँचवें निबंध में लेखिका के शब्द सुलगते से हैं। भाव अत्यंत ज्वलन्त और जाग्रत हैं जिसको



मैथिलीशरण गुप्त और दिनकर के उद्धरणों से इन्होंने और भी जीवन्त और उल्लसित बना दिया है।

छठा निबंध 'महिला सशक्तीकरण भ्रम या संभ्रम' शीर्षक से है। इस निबंध का शीर्षक भी चोटदार और कोंचने वाला है। लेखिका यह सिद्ध करना चाहती हैं कि महिला सशक्तीकरण एक तरह से तुष्टीकरण है। इस शब्द के द्वारा भी राजनैतिक वर्ग, बुद्धिजीवी वर्ग, साहित्यिक वर्ग नारी की या तो खुशामद कर रहा है या इस समाज से सहजता से कुछ प्राप्त करना चाहता है। महिला 'सशक्तीकरण' शब्द से संभ्रम रखनेवाले, इसे सही अर्थ में स्वीकार करने वाले और समझनेवाले गिने-चुने लोग ही हैं, क्योंकि ऐसे विद्वत्जन यह समझते हैं कि इस शब्द की कोई आवश्यकता नहीं है। बड़े अच्छे ढंग से, बड़ी तार्किक भाषा में, अत्यंत सकारात्मक रूप से, अपनी कल्पना शक्ति का उपयोग करते हुए लेखिका ने इस निबंध को प्रस्तुत किया है।

'कामकाजी महिलायें : नारी उत्क्रान्ति' से लेकर 'इक्कीसवीं सदी में लड़कियों के प्रगतिशील कदम और अभिभावकों के कर्त्तव्य' वस्तुनिष्ठ निबंध हैं, क्योंकि लेखिका ने इसमें वर्त्तमान सदी में महिलाओं की व्यावहारिक, सामाजिक बल्कि सभी प्रकार की प्रगतियों का आकलन किया है।

अन्तिम निबंध 'साहित्य, संगीत और कला की धुन टेरती आधुनिक नारी' श्रीमती अग्रवाल की परिष्कृत रुचि को दर्शाता है। वस्तुतः साहित्य, संगीत और कला इन तीनों का समाहित रूप ही है नारी। नारी में जो सतत् देने की शक्ति है वह उसका संगीत है, नारी में जो सब कुछ वरण करने की शक्ति है वही उसका साहित्य है और नारी में जो सृष्टि चालन की सामर्थ्य है वही उनकी कला है। लेखिका ने इस तथ्य को अपने इस निबंध में भलीभाँति पुष्ट किया है।

इस प्रकार 'आधी दुनिया की धमक' श्रीमती कामिनी की एक ऐसी पुस्तक है जिसकी आज के युग में स्वाभाविक माँग है। इसलिए इसका समादर भी होना चाहिए, होगा ही–''**सच है कि कुछ सितारे देते नये नजारे, लेकिन न दीप छोटे करते हैं जो उजारे।**''

**–डॉ. प्रभाकर पाठक**
पूर्व हिन्दी विभागाध्यक्ष,
ल.ना. मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा।

❐❐❐

# अनुशंसा

श्रीमती कामिनी अग्रवाल की पुस्तक 'आधी दुनिया की ध मक' काफी रोचक है। उन्होंने अपने अथक प्रयास, शोध-चिन्तन और अध्ययन के उपरान्त एक साप्रसंगिक सामाजिक समस्या का विश्लेषण इस पुस्तक के माध्यम से प्रस्तुत किया है। एक लम्बे समय से चलते आ रहे इनकी गहरे साहित्यिक, आध्यात्मिक एवं दार्शनिक विचारों की झलक इस पुस्तक में मिलती है।

महिला सशक्तीकरण एवं सामाजिक असमानता निदान की प्रक्रिया को किसी भ्रम के दायरे से ऊपर उठाने हेतु यह आवश्यक हो जाता है कि हम अपनी 'कथनी एवं करनी' में सामंजस्य लाने का प्रयास करें एवं महिला सशक्तीकरण को एक सामयिक आवश्यकता एवं ऐतिहासिक कदम के रूप में देखें। यह मानव सभ्यता की विकास पद्धति की अगली क्रांति का अविच्छिन्न सूत्र है। इसके लिये राजनीतिक प्रतिद्वंद्विता एवं सामाजिक विभाजन के कुत्सित विचारों से ऊपर उठने की आवश्यकता है साथ ही साथ इसकी भी कि अपने मानवीय अधिकारों के संरक्षण हेतु नारी स्वयं कटिबद्ध हो आगे आयें। समाज के प्रबुद्ध वर्ग नारी के इस प्रयास में पूरा भागीदार हों।

भारतीय संस्कृति एवं समाज युग-युग से दो विचार धाराओं

को समन्वित करने के निरंतर प्रयास में निरत रहा है। एक वह धारा है जो विभिन्न विचारों, विश्वासों, भाषाओं, जीवनाचरण एवं शाश्वत मानवीय मूल्यों का आदर करते हुए समेकित सहअस्तित्त्व की भावनाओं को सबल बनाती है। दूसरी जो अलगाववादी घृणा, द्वेष एवं अहंकार जनित स्वार्थ से प्रेरित हो प्यूरैटिनिज्म (Puratanism) को सिंचित और पल्लवित करती आ रही है। हम आज मानव इतिहास की जिस दहलीज पर खड़े हैं, वहाँ वैश्विक आधार पर समानता और सहअस्तित्त्व का वैदिक मंत्रोच्चारण हो रहा है। इसकी अनदेखी करना मरीचिका के वशीभूत हो पथभ्रष्ट होना होगा। अत: नारी समानता और उससे उत्पन्न सशक्तीकरण मात्र 'आधी दुनिया की धमक' नहीं अब 'एकीकृत दुनियाँ की धमक' के रूप में देखी और पहचानी जानी चाहिए।

यह हमारी हार्दिक कामना है कि आनेवाले लम्बे समय तक श्रीमती कामिनी अग्रवाल अपनी रचना, शोध एवं समाज सेवा से हमें लाभान्वित करती रहें।

**-मानस बिहारी वर्मा**
प्रख्यात वैज्ञानिक-चिन्तक।

# अभिमत

श्रीमती कामिनी अग्रवाल की पुस्तक 'आधी दुनिया की धमक' जिसमें 13 रचनाएँ हैं, को पढ़कर विगत 100 वर्षों के नारी इतिहास का जीता-जागता चित्र आँखों के सामने नाचने लगता है। लेखिका ने प्राचीन काल से लेकर आधुनिक नारी का वास्तविक चित्र प्रस्तुत किया है। इसमें नारी की सभी उपलब्धियों का बहुत ही आकर्षक तथा सजीव चित्रण है। इसकी भाषा सरल और सुबोध है। विचारधारा स्वावलम्बी और क्रान्तिकारी है। भाषा, शैली और अभिव्यक्ति में इन्होंने सर्वत्र अनुशासन बनाए रखा है। लेखिका में महिला प्रवृत्तियों की मूल्यांकन-क्षमता है। सचमुच इन्होंने सार्थक और सराहनीय प्रयास किया है।

सर्वविदित है कि भारत की प्रबुद्ध नारियों ने हमेशा से स्वयं जागरूक रहकर अन्य पिछड़ी नारियों में चेतना-जागरण का प्रयास किया है। फलत: स्वाधीनता से लेकर आजतक जीवन के विविध क्षेत्रों में नारी का उल्लेखनीय योगदान है। सरोजिनी नायडू, सुचेता कृपलानी, राजकुमारी अमृत कौर, विजयलक्ष्मी पंडित, इन्दिरा गाँधी और महादेवी वर्मा आदि अनेक नारियों के प्रयास से इतना तो जरूर हुआ कि भारत की नारी ने अपने महत्व को पहचाना और परखा,

किन्तु रूढ़िवादी समाज ने हमेशा अड़चनें पैदा की; फिर भी नारियों ने अपने साहस से यह सिद्ध कर दिखलाया–**''चले पैर जिस ओर पथिक/उस पथ से फिर मुड़ना कैसा ?''**

सचमुच ही भारतीय नारी ने पीछे मुड़कर नहीं देखा। इस पुस्तक में संकलित निबंधों से नारी की ऐश्वर्यपूर्ण उपलब्धियों का वृत्तान्त स्पष्ट हो जाता है। आज की नारियाँ धरती पर चारों दिशाओं में संचरण ही नहीं कर रही हैं, बल्कि अन्तरिक्ष में भी उड़ने लगी हैं। इधर नारी-विमर्श विषयक बहुत सारे साहित्य रचे जा रहे हैं। ऐसे में यह पुस्तक विशेष उपयोगी है। देश की भगिनियों के लिए यह कृति निश्चिय ही प्रेरणादायिनी साबित होगी। मेरी शुभकामना है कि यह पुस्तक पाठकों के बीच अत्यन्त लोकप्रिय और ग्राह्य हो।

**गुलाब चन्द**
अपर महानिदेशक (म.क्षे.-1)
आकाशवाणी, 18, विधान सभा मार्ग,
लखनऊ-226001.



# चारितार्थिकी

श्रीमती कामिनी अग्रवाल का व्यक्तित्व वहिरंगत: जितना ही स्निग्ध, सौम्य, सरस और सरल प्रतीत होता है, अन्तरंगत: वे उतनी ही तरल, संवेदनशील, चिन्तनमग्न और मुखर हैं। कर्त्तव्य के प्रति समर्पित, आदर्श के प्रति निष्ठावान, सिद्धान्त के प्रति दृढ़ रहनेवाली श्रीमती अग्रवाल के अद्यतन जीवन चरित्र के अवलोकन से यही सिद्ध होता है कि विघ्न बाधाओं से जूझते हुए उन्होंने पथ की पीड़ा के परवाह किये बिना अपने अभियान को सम्भाव्य बनाया है। आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री ने कहा है–**''मेरे पथ में न विराम रहा, चलता मैं आठो याम रहा।''**

श्रीमती अग्रवाल का जीवन भी उनकी अविराम यात्रा का पर्याय है। माध्यमिक शिक्षा (बिहार) की प्रधानाध्यापिका के रूप में अपनी दीर्घ-दक्ष सेवा और प्रशासनिक कौशल के लिए श्रीमती अग्रवाल छात्र-छात्रा, अभिभावक और समाज में प्रतिष्ठित रही हैं। इनकी सिद्धि और प्रसिद्धि का इससे बढ़कर और क्या प्रमाण हो सकता है कि राज्य सरकार, बिहार द्वारा ये अपने उत्कृष्ट कार्य के लिए सम्मानित तो हुई हीं, वर्ष 1997 में महामहिम राष्ट्रपति द्वारा राष्ट्रीय पुरस्कार से इन्हें अलंकृत और विभूषित किया गया।

निश्चिय ही श्रीमती अग्रवाल का व्यक्तित्व उदात्त, बहुआयामी

और गौरवशाली है। सेवा-निवृत होने के उपरांत भी ये समाज-सेवा, अध्यात्म, अध्ययन और लेखन के साथ अनेक लोक-मंगलकारी क्रियाशीलनों में सन्नद्ध हैं तथा अनेक संस्थाओं से जुड़ी हुई हैं।

यद्यपि श्रीमती अग्रवाल के आलेख कई शीर्षस्थ पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहे हैं, वार्ताएँ एवं परिचर्चाएँ आकाशवाणी द्वारा प्रसारित होती रही हैं, फिर भी उनके सारस्वत व्यक्तित्व का लेखकीय पक्ष प्रायः गोपन ही रहा है। हर्ष की बात है कि वैचारिक और चेतनाप्रवण कृति को लेकर अब ये कृतिकारों की सरणि में प्रतिष्ठित हो रही हैं।

श्रीमती अग्रवाल की पुस्तकाकार प्रकाशित इस प्रथम पुस्तक 'आधी दुनिया की धमक' को पढ़-गुण कर मैं अभिभूत हुआ हूँ। सचमुच पुस्तक में निहित कथ्य और तथ्य, देश की नारी शक्ति की जिजीविषा, उसकी उद्दाम महत्वाकांक्षा और उसके अदम्य शौर्य एवं संघर्ष का इतिवृत्त उपस्थित करते हैं। नारीत्व के जुझारू तेवर ने संघर्ष का यह पंथ 19वीं-20वीं शताब्दी में ही स्वीकार कर लिया था। दमन, शोषण, उत्पीड़न और अन्याय की लपटों में झुलसनेवाली नारी, गुलामी की जंजीरों को तोड़ने के लिए कसमसा उठी थी जिसका आभास Christabal PANKHUST के "Vote for women, 31 March 1911 की इस उक्ति से होता है 'We are here to claim our right as women', not only to be free, but to fight for freedom, that is our right as well as our duty."

अनवरत संघर्ष चलता रहा है और इसी संघर्ष का यह परिणाम है कि नारी आज गरिमा के उच्चतम शिखर पर आरूढ़ होकर Charles De Gaille की इस उक्ति को चरितार्थ करती है ''For glory gives herself only to those who always have dreamed of her.''

लेखिका के व्यक्तित्व के अनुरूप ही पुस्तक में संकलित



निबंध की भाषा अर्थवाही और परिमार्जित है। 'गद्यः कवीनां निकषः वदन्ति' के आलोक में विचार करें तो कहा जा सकता है कि लेखिका का चातुर्य गम्भीर विषय को सहज, सरल और बोधगम्य रूप से प्रगट करने में प्रतिपन्न हुआ है। अभिव्यक्ति का यह नैपुण्य और प्रसाद गुण लेखिका और पाठक के बीच सीधा संवाद स्थापित कराने में सक्षम है। पुस्तक की भाषा और अभिव्यक्ति लेखिका की सौम्य, सरस, स्निग्ध, अनगढ़ और हंसमुख किन्तु प्रभावशाली व्यक्तित्व का ही प्रतिरूप है अर्थात् संग्रह के आलेखों में लेखिका स्वयं अभिव्यक्त हुई हैं।

इस प्रथम कृति का अभिनंदन करता हूँ तथा मैं लेखिका के प्रति अपनी शुभकामना प्रकट करते हुए कामना करता हूँ कि आनेवाले दिनों में अपनी नई प्रकाशित कृतियों के साथ पाठकों से लेखिका का संवाद चलता रहे। मुझे पूरी आशा है, पाठक सहृदयता पूर्वक इस पुस्तक का अध्ययन करेंगे तथा बहू-बेटियाँ अपने आँचल में इस पुस्तक को पढ़कर भावी जीवन के लिए संबल बटोर सकेंगी।

'त्रिध्वन्या' **–शंभु अगेही**
शुभंकरपुर, दरभंगा।

❐❐❐

# अपनी ओर से

अपने सम्पूर्ण जीवन की शिक्षा-दीक्षा और विद्यालय सेवा के क्रम में मैंने अनुभव किया कि प्रायः अधिकांश परिवार में बालक-बालिकाओं के लालन-पालन, खान-पान, रहन-सहन में भेद-भाव किया जाता है। बालकों के ऊपर लोग अधिक ध्यान देते हैं जबकि बालिकाओं की तरफ कम। इसके पीछे प्रायः परिवार की या बड़े बुजुर्गों की यह धारणा है कि बेटा तो आगे चलकर कमायेगा और घर चलायेगा, परिवार की गाड़ी को आगे बढ़ायेगा और लड़की तो दूसरे के घर चली जायेगी। इसलिए इस पर इतना ध्यान देना क्या ? यह धारणा बिल्कुल ही फिजुल एवं गलत है। बालक और बालिका समाज या परिवार की गाड़ी को चलाने वाले दो पहिये हैं। दोनों का मजबूत होना आवश्यक है। परिवार में प्रायः यह भी देखा जाता है कि नारी को जो उचित सम्मान मिलना चाहिए वह नहीं मिलता है। सभ्य, सुसंस्कृत एवं विकसित समाज के निर्माण के लिए परिवार एवं समाज में नारी को पूर्ण आर्थिक सशक्तता के साथ-साथ पूर्ण सम्मान भी मिलना अत्यन्त आवश्यक है।

अतः महिलाओं के सम्बन्ध में समाज एवं परिवार की मानसिकता में परिवर्त्तन होना अनिवार्य है। पहले से बनाये गये कानूनों

में भी परिवर्तन होना चाहिए और जो भी कानून सरकार द्वारा बने, उसका पालन सख्ती से हो, जिससे बालिकायें एवं महिलायें पूर्ण आत्मविश्वास के साथ निर्भीक होकर शोषण, अन्याय, अशिक्षा, सामाजिक कुरीतियाँ, अन्धविश्वास एवं गलत परम्पराओं के प्रति अपनी आवाज उठा सकें और परिवार, समाज एवं राष्ट्र के नवनिर्माण में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकें।

नारी के सौ वर्षों के संघर्ष, त्याग, तपस्या एवं बलिदान के इतिहास ने महिलाओं को समानता का अधिकार दिलाया। आज समानता का अधिकार पाकर महिलायें मुखर हो हर क्षेत्र में, हर स्थान पर कामयाब हो रही हैं। अब शायद ही कोई ऐसा क्षेत्र बाकी है जिसे महिलाओं ने अपनी सफलता के रंग में न रंगा हो।

क्षेत्र चाहे कोई भी हो, राजनीति, पुलिस-सेवा, सिविल सेवा, शिक्षण-प्रशिक्षण, निर्देशन, पर्वतारोहण, अन्तरिक्ष-भ्रमण, शासन-प्रशासन, साहित्य, संगीत, कला, चिकित्सा, तकनीक, आकाश अर्थात् आसमान की ऊँचाइयों से लेकर समन्दर की गहराईयों तक, ये हर जगह अपने हौसले की बुलन्दियाँ पेश कर रही हैं।

आज नारी ने स्पष्ट कर दिया कि उनके पास सपने हैं तो उन्हें पूरा करने की क्षमता भी उनमें है। हर महिला में कुछ नयी और बेहतर कर दिखाने की गुणवत्ता है। नारी में अनंत शक्ति है–**'या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता'** पहले यह शक्ति घर तक ही सीमित थी। अब यह शक्ति बाहर हर क्षेत्र में उजागर हो रही है। आज तेजी से महिलायें बढ़ रही हैं। इनके बढ़ते कदम के साथ परिवार, समाज और सरकार का भी समर्थन और सहयोग मिल रहा है। आज महिलाओं को पुरुषों के समान सशक्त समझा जा रहा है। महिलाओं से भी अपेक्षा की जाती है कि वे अपनी बौद्धिक क्षमता एवं श्रेष्ठ कार्यों से देश के समक्ष एक आदर्श प्रस्तुत कर सबको नई राह



दिखावें और सबकी प्रेरणा का स्रोत बनें।

इसी संदर्भ में मैंने 'आधी दुनिया की धमक' पुस्तक आपके सामने प्रस्तुत की है। इस पुस्तक में कुल तेरह रचनाएँ हैं। मेरा अनुभव इस पुस्तक के रूप में आपके समक्ष है। आशा है कि यह पुस्तक पाठकों को पसंद आयेगी। विशेषकर महिलाओं को जो आज उनकी स्वायत्तता की याद दिलायेगी।

'आधी दुनिया की धमक' के प्रेरणापवन हैं श्री बलदेव लाल दास, गायत्री चेतना केन्द्र, कबरा घाट और पवन को अपनी सारस्वत सुगंध से मेरी लेखनी को प्राण-प्रमाण देने वाले हैं डॉ. प्रभाकर पाठक जो ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय में पूर्व हिन्दी विभागाध्यक्ष हैं। इन दोनों के प्रति मैं हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करती हूँ।

प्रख्यात वैज्ञानिक एवं चिन्तक श्रद्धेय श्री मानस बिहारी वर्मा, जिन्होंने मेरी इस छोटी-सी पुस्तक की अनुशंसा लिखकर मेरा उत्साह एवं मान बढ़ाया है, के प्रति भी हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करती हूँ।

साहित्य मर्मज्ञ श्री गुलाब चन्द जी, अपर-महानिदेशक(म.क्षे. -1) आकाशवाणी, लखनऊ के प्रति भी मैं हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करती हूँ जिन्होंने अनुशंसा के रूप में इस पुस्तक पर अपना अभिमत लिखकर मुझे सम्मान दिया है।

इस पुस्तक को पूरा करने एवं प्रकाशन करने हेतु बार-बार तकादा कर मेरे श्रम को सार्थक करने वाले समाजसेवी एवं वरिष्ठ पत्रकार परम स्नेही श्री विनय कुमार अग्रवाल, बंगला गढ़, दरभंगा हैं। हमेशा इन्होंने मुझे लिखने के लिए उत्साहित किया है। इनके प्रति भी मैं पूर्ण आभार व्यक्त करती हूँ।

साथ ही इस पुस्तक को प्रकाशित करने में मुझे श्री शम्भु 'अगेही', त्रिध्वन्या, शुभंकरपुर, दरभंगा का पूर्ण सहयोग मिला है इनके प्रति भी मैं पूर्ण आभार व्यक्त करती हूँ।

मैं समीक्षा प्रकाशन के प्रति भी साभार शुभकामना अर्पित करती हूँ जिनके सहयोग के बिना पुस्तक का इस रूप-रंग में आ पाना कदाचित संभव नहीं होता।

मैं अपनी माता स्व. लीलावती देवी पिता स्व. कामता प्रसाद अग्रवाल एवं अपने पति स्व. लक्ष्मी चन्द गोविल के चरणों में श्रद्धांजलि अर्पित करती हूँ, जो मरकर भी मेरे हर कदम में मेरे साथ हैं।

अन्त में मैं अपने छोटे भाइयों प्रभाकर, पुष्कर एवं श्रीकान्त, बहनों कुमुद, किरण एवं कनक तथा पुत्रों मनोज एवं अरूण, पुत्री सुमीता, दामाद संजय, पुत्र-बधुओं अलका एवं निशि, पौत्र-पौत्री शशांक, प्रिया एवं यश, नाती सारंग को उनकी शुभकामनाओं एवं आकांक्षाओं के लिए उन्हें असीम प्यार एवं आशीर्वाद देती हूँ।

**–कामिनी अग्रवाल**



# आधी दुनिया : एक महाशक्ति

आज की तारीख में 'आधी दुनिया' शब्द युग्म नारी-जाति के संदर्भ में पारिभाषिक बन गया है। इस सत्य से तो इंकार किया भी नहीं जा सकता कि नारी वस्तुतः पुरुष का पूरक नहीं, उसकी प्रेरणा शक्ति है। पूरक वस्तु के अभाव में तो काम हो सकता है लेकिन प्रेरणा के बिना कोई भी योजना चाहे वह सृष्टिकर्त्ता की ही योजना क्यों न हो, पूरी नहीं हो सकती। 'आधी दुनिया' की बात भले ही आज के शब्दो में नही लेकिन उपनिषदों ने अपने दृष्टिकोण से यह सिद्ध कर दिया है कि नारी आधी दुनिया के विशेषण के लिए उपयुक्त है। उपनिषद् में ऐसा कहा गया है कि ब्रह्म जब अकेले आनन्दित नहीं रह सका तो उसने स्वयं को ही दो भागों में विभाजित कर दिया–पति और पत्नी के रूप में–**''एकाकीनारमत। द्विधा व्यमजत। पतिश्च पत्निश्चाभवत।''**

इक्कीसवी सदी को नारी जागरण की सदी कहा जाता है। यह कोई अतिशयोक्ति नहीं। इस सदी के पूर्व से ही महिलाओं ने अनेक क्षेत्रों में अपना विकास, अभ्युदय और कारगुजारियाँ सिद्ध करनी शुरू कर दी थीं। इक्कीसवीं सदी एक तरह से नारी की सुदृढ़ स्थिति की

सदी है, जिसकी नींव बीसवीं सदी में ही पड़नी शुरू हो गई थी। आज महिलायें अपने अधिकार के लिए किसी का मुँह नहीं देखतीं। परिवार और समाज में सुरक्षित स्थिति के लिए, आर्थिक सुरक्षा के लिए, वे स्वयं अपना मार्ग संधान करतीं और आत्मविश्वास के साथ आगे बढ़ती हैं। शासन-प्रशासन, राजनीति, शिक्षा, विज्ञान, चिकत्सा, समाज कल्याण, उद्योग, आकाश-यात्रा अथवा पर्वतारोहण महिलाओं का नाम सर्वत्र गूँज रहा है। एक तरह से जिस कार्य के लिए कल तक, वे अक्षम समझी जाती थीं, वहाँ भी वे कुशलतापूर्वक और किसी भी पुरुष से आगे बढ़कर अपना दायित्व-निर्वहन कर रही हैं।

आज देश के लिए यह गर्व का विषय है कि श्रीमती प्रतिभा पाटिल देश की प्रथम महिला राष्ट्रपति हैं। लोकसभा अध्यक्ष मीरा कुमार हैं। श्रीमती सोनिया गांधी देश की महिला कांग्रेस अध्यक्ष हैं। प्रतिभा पाटिल ने राष्ट्रपति पद की शपथ लेने के बाद जब पहला भाषण पढ़ा उसमें कन्या भ्रूण हत्या को रोकने के प्रति अपनी वचन-बद्धता दर्शायी। दुनिया के अन्य अनेक देशों की राष्ट्र-प्रमुख महिलायें आज वर्त्तमान में हैं। भारतीय मूल की सुनीता विलियम्स अन्तरिक्ष में अपनी ध्वजा फहराने वाली प्रसिद्ध महिला हैं। आज भी भारतवर्ष के कई राज्यों का प्रतिनिधित्व मुख्यमंत्री के रूप में महिलायें कर रही हैं। आजादी से अबतक चौदह महिला मुख्यमंत्री बनी हैं। सुचेता कृपलानी, नन्दिनी सतपथी, शशिकला काकोदकर, सईदा अनवरा, जानकी रामचन्द्रन, जयललिता, मायावती, रजिन्दर कौर भट्ठल, राबड़ी देवी, सुषमा स्वराज, शीला दीक्षित, उमा भारती, वसुन्धरा राजे सिंधिया और ममता बनर्जी—ये पुरुषों की अपेक्षा अधिक सफल और शक्तिशाली साबित हुई हैं ।

बीसवीं सदी में जिन कुछ महिलाओं ने इतिहास बनाया उसका प्रकाश दिन-दूना और रात-चौगुना बढ़ता नजर आ रहा है।



भारतीय नारी को पहली सफलता शिक्षा के क्षेत्र में तब मिली जब हंसा मेहता 1949 ई. में बड़ौदा विश्वविद्यालय की पहली महिला कुलपति बनीं। 1950 में अन्ना राजम जार्ज ने भारतीय प्रशासनिक सेवा की पहली महिला अधिकारी बनने का गौरव प्राप्त किया और इस प्रकार भारतीय नारी ने पुरुषों को सीधे चुनौती दे डाली। 1951 में प्रेमा माथुर देश की प्रथम महिला व्यावसायिक पायलट बन आसमान में उड़ान भरने लगीं। 1953 में विजय लक्ष्मी पंडित संयुक्त राष्ट्र आमसभा की पहली महिला अध्यक्ष चुनी गईं। इससे पूर्व वे मास्को में भारत की राजदूत भी रह चुकी थीं। राष्ट्रीय आन्दोलन में भी उन्होंने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। शौर्य एवं वीरता प्रदर्शित करने के लिए 1956 में ग्लोरिया बेरी को मरणोपरान्त आशोक चक्र प्रदान किया गया। ग्लैमर की दुनिया में नर्गिस दत्त मील का पत्थर साबित हुईं। 1968 में फिल्म 'रात और दिन' के लिए राष्ट्रीय पुरस्कार से इन्हें सम्मानित किया गया। 1971 में श्रीमती इन्दिरा गाँधी को भारत रत्न की उपाधि से सम्मानित किया गया। 1972 में किरण वेदी पुलिस सेवा की प्रथम महिला अधिकारी बनीं। देश की पहली महिला आइ. पी.एस. अधिकारी के अलावा इनकी पहचान दिल्ली के तिहाड़ जेल सुधारक के रूप में भी है। जेल को इन्होंने कैदियों के रहने लायक बनाया। पिछले एक वर्ष से अन्ना हजारे के नेतृत्व में काम करने वाली किरण वेदी हाथ में तिरंगा लिए अपने ओजस्वी भाषण द्वारा लोगों में उत्साह भरने का काम तो करती ही रही हैं, समय-समय पर अन्ना को सलाह देने का भी काम करती हैं। वे आज भी दूरदर्शन के चैनलों पर अपनी क्रांतिकारी और प्रगतिशील ऐसी टिप्पणियाँ प्रस्तुत करती हैं जिनसे कमजोर महिला वर्ग को राहत मिलती है। नारी-समस्या सम्बन्धी अनेक मुकदमों का निपटारा अब वे स्वतंत्र रूप से करती हैं। वे इतनी स्वाभिमानिनी हैं कि प्रोन्नति के मामले में जब उनके कनीय

पदाधिकारी को उनसे वरीय बना दिया गया तो उन्होंने त्यागपत्र दे दिया। हम जिस परखनली शिशु की चर्चा करते हैं और मानव जन्म के सम्बन्ध में मनुष्य के कौशल की बात करते हैं, उसमें डॉ. इन्दिरा हिन्दूजा ने ही भारत में सबसे पहले यह चमत्कार किया था। साहित्य के क्षेत्र में अमृता प्रीतम का कोई सानी नहीं है। इन्हें साहित्य के अकादमी पुरस्कार से नवाजा गया। बचेन्द्री पाल ने दुनिया की सबसे ऊँची चोटी माउन्ट ऐवरेस्ट पर अपना तिरंगा झण्डा फहराकर पहली भारतीय महिला के गौरव की शान रखी। 2011 में माउण्ट एवरेस्ट पर भारतीय तिरंगा फहराने वाली, वायु सेना की अधिकारी और बिहार की बेटी स्क्वाड्रन लीडर निरूपमा पांडेय ने एवरेस्ट फतह कर महिलाओं के साथ-साथ पूरे देश को गौरवान्वित किया।

गौरव का विषय है कि 2011 में ही झारखंड की प्रेमलता अग्रवाल ने भी एवरेस्ट फतह कर यह दुनिया को दिखला दिया है कि 'मुश्किल नहीं है कुछ भी अगर ठान लीजिए' संकल्प यदि सच्चा हो और खुद पर यदि विश्वास हो तो सफलता अवश्य मिलती है। सबसे आश्चर्य एवं गर्व का विषय है कि अरुणाचल प्रदेश की अंशु जमसेनपा ने एवरेस्ट की चोटी पर दस दिनों के भीतर दो बार चढ़ाई कर पर्वतारोहण कर नया रिकार्ड बनाया। वह एक ही सत्र में एवरेस्ट पर दो बार चढ़ने वाली विश्व की पहली महिला हैं। उनकी यह जीत पूरी नारी जाति की जीत है। उनकी इस यात्रा की कहानी हम सबको ऊर्जा देती है। उनकी हिम्मत, मेहनत और मजबूत इच्छा शक्ति काबिलेतारीफ है। मेजर मिताली मधुमिता भारत की पहली ऐसी महिला अधिकारी बनीं जिन्हें वीरता पुरस्कार से सम्मानित किया गया। निर्मला कन्नन नौसेना में पहली टू-स्टार अधिकारी बनी। कन्नन को 'सर्जन रीयर एडमिरल' का पद नाम दिया गया और दक्षिणी कमान में चिकित्सा पदाधिकारी की जिम्मेदारियाँ सौंपी गईं। वह नौसेना में



'रियर एडमिरल रैंक' की पहली महिला अधिकारी हैं। शान्ति दूत मदर टेरेसा भारतवासी ही थीं, जिन्हें शान्ति और सेवा के नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया। कंचन चौधरी भट्टाचार्य भारत की प्रथम महिला पुलिस निदेशक बनीं। उड़नपरी के नाम से विख्यात पी. टी. उषा ने ओलम्पिक में स्वर्णपदक प्राप्त कर भारत का सिर ऊँचा किया। 2011 में अर्जुन पुरस्कार से सम्मानित खिलाड़ियों में देश की पाँच बेटियाँ भी शामिल हैं, ये हैं—ज्वाला गुट्टा, सन्ध्या रानी, तेजस्विनी साबंत, तेजस्विनी बाई एवं प्रिजा श्रीधरन। इनमे ज्वाला गुट्टा बैडमिंटन की महारथी हैं। ये गोल्ड मेडल बिजेता हैं। 13 बार नेशनल चैम्पियनशिप जीत चुकी हैं। संध्या रानी ने बॉक्सिंग से वुशु तक सफर कर गुवाँझूं ऐशियन गेम्स में सिल्वर मेडल प्राप्त किया। तेजस्विनी साबंत ने वर्ल्ड शूटिंग चौम्पियनशिप में गोल्ड, मेलवर्न कामनवेल्थ में दो गोल्ड जीता। तेजस्विनी बाई ने महिला कबड्डी में देश की झोली में गोल्ड मेडल डाल कर देश को गौरवान्वित किया। प्रिजा श्रीधरन लम्बी दूरी के धावकों में पहचानी जाती हैं। इन्होंने दस हजार मीटर की दौड़ में भारत को गोल्ड मेडल और पांच हजार की दौड़ में रजत दिलाया। स्वर साम्राज्ञी लता मंगेशकर की सुमधुर आवाज आज भी लोगों के कानों में मिश्री घोल रही है। गायन के क्षेत्र में ये अनेक राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त कर चुकी हैं।

ये सब तो हैं किन्तु आज देश में महिलाओं की ये जो उपलब्धियाँ हैं, ये उनकी अपनी मशक्कत तथा मेहनत की बदौलत हैं। सरकार और समाज आज तक औरतों के अधिकार का दुमदुम्भीवादन तो करते रहे हैं किन्तु उन्हें मार्ग देने में, सुविधाएँ मुहैया कराने में, प्रगति का पथ प्रशस्त करने में शायद ही आगे आए हों। हाँ, यह बात जरूर है कि कोई महिला जब अपनी प्रेरणा और प्रतिभा की बदौलत आगे बढ़ जाती है तो ये दोनों ही उसे अपने करतल पर उठाकर

नृत्यवान हो जाते हैं। किसी भी नारी में, किसी भी पुरुष से कम उर्जा एवं शक्ति नहीं है। कहना तो यह चाहिए कि नारी ही पुरुष-शक्ति का भी केन्द्र है। जितने भी प्रतिभाशाली राष्ट्रनिर्माता, साहित्यकार, धर्म-नेता अथवा किसी भी क्षेत्र, अध्यात्म अथवा विज्ञान मे अपना नाम रौशन करनेवाले पुरुष हुए हैं, उनकी जन्मदात्री तो नारी ही है।

बीसवीं सदी के तिलक, महात्मा गांधी, सुभाषचन्द्र बोस, जवाहरलाल नेहरू, राममनोहर लोहिया और इक्कीसवीं सदी में भी पूर्व प्रधानमंत्री अटल बिहारी बाजपेयी तक को इस धरती पर लाने वाली नारी ही तो है। यह कहने में कोई संकोच नहीं होना चाहिए कि जिसे हम 'आधी दुनिया' कहते हैं, उसी के बदौलत यह 'पूरी दुनिया' है। इसीलिये आवश्यकता इस बात की है कि महिलाओं को समाज और सरकार से भी प्रोत्साहन मिलना चाहिए जिससे उनकी छुपी हुई प्रतिभा और शक्ति और भी जागृत हो जाय। यह सुखद तथ्य है कि आज सरकार और समाज दोनों ही इस क्षेत्र में रुचि दिखला रहे हैं और नारियाँ अपनी 'अबला' की छवि धो रही हैं और घर से बाहर निकल कर हर क्षेत्र में अपना सम्मानजनक और प्रतिष्ठापूर्ण स्थान प्राप्त कर रही हैं।

यह सत्य है कि भारत में महिलाओं को वैधानिक रूप से वे सभी अधिकार प्राप्त हैं, जो पुरुषों को भी है, किन्तु व्यवहार में अनेक विसंगतियाँ हैं। आज भी एक कन्या शिशु का जन्म लोगों को प्रसन्न नहीं कर पाता। ऐसा क्यों? सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक अधिकार क्षेत्र में आज भी नारियों की अवहेलना की जाती है। इससे तो यही होगा कि देश की आधी ताकत प्राय: लकवाग्रस्त हो जायेगी। आज भी दहेज, बलात्कार, घरेलू हिंसा और यौन शोषण स्त्रियों के लिए आम बात है। और तो और कार्यालयों में, संस्थानों में जहाँ स्त्रियाँ पुरुष वर्ग के साथ काम करती हैं, वहाँ भी पदाधिकारी और



कर्मचारी उन्हें अपना शिकार बनाने की कुचेष्टा करते हैं। यह कितनी बड़ी विडम्बना है कि वेश्यावृत्ति के लिए भी संसार में स्त्रियों को लाइसेंस की जरूरत है। पुरुष कितना भी दुष्चरित्र हो, उसके लिए किसी लाइसेंस की जरूरत नहीं है। यह बात कहने में थोड़ी खराब जरूर लगती है लेकिन आखिर वेश्यावृत्ति भी क्या है ? यह वर्ग किसने बनाया ? ये स्त्रियाँ कहाँ से आईं ? क्यों आईं ? जो हुआ सो हुआ, अब हमें समाज को ऐसी चीजों से निजात दिलाना होगा। प्रसन्नता का विषय है कि सुप्रीम कोर्ट वेश्यावृत्ति रोकने के लिए काफी गम्भीर है। कोर्ट ने कहा कि वेश्यावृत्ति को रोकने के लिए केन्द्र और राज्य सरकार सेक्स वर्करों के लिए व्यावसायिक ट्रेनिंग की व्यवस्था करे जिससे वे अपनी जीविका चला सकें। कोर्ट ने यह भी कहा इस दलदल से महिलाओं को बाहर निकालने के लिए व्यावसायिक ट्रेनिंग ही काफी नहीं है, यदि कोई सेक्स वर्कर किसी प्रोडक्ट को बनाते हैं तो सरकार को उस प्रोडक्ट के लिए बाजार उपलब्ध करवाने की जिम्मेवारी भी लेनी होगी। साथ ही कोर्ट ने केन्द्र और राज्य सरकारों को यह बताने के लिए भी कहा कि वेश्याओं के पुनर्वास के लिए क्या कदम उठाए जा रहे हैं और सरकार द्वारा अभी तक कौन-कौन से कदम उठाये गये हैं।

बहू-बेटियों के उत्पीड़न और दहेज-हत्या के मूल में स्त्री को माना गया है किन्तु यह मान्यता सही नहीं है। इसके मूल में भी पितृ सत्तात्मक व्यवस्था ही है। स्त्री जीवन भर के अपने अस्तित्व के अस्वीकार का बदला बहू-बेटियों से लेती है। यह मनोवैज्ञानिक सत्य है कि जीवन-भर शोषित प्रताड़ित स्त्री अपनी कुंठा और अपनी प्रतिक्रिया अपने से कमजोर पर निकालती है। आखिर यह कुंठा और प्रताड़ना उन्हें कहाँ से मिली और जहाँ से भी मिली, उस मानसिकता में अगर परिवर्त्तन नहीं होता है, तो अभी नारी-प्रतिभा के जागरण का

जो दीप जल रहा है, वह अपनी कँपकँपाती हुई लौ में कभी भी परिणत हो सकता है। इस लौ को जलाये रखने के लिए यह आवश्यक है कि प्रबुद्ध पुरुष-वर्ग महिलाओं को आगे बढ़ने के लिए उत्प्रेरित तो करें ही, रास्ता भी तैयार करें और स्त्रियाँ भी अपनी इस हीन मानसिकता से अलग हो जायें कि वे पुरुष के अवलम्ब के बिना एक कदम भी नहीं चल सकतीं। अपने सामने अपने से पूर्व की महिलाओं का इतिहास देखते हुए उन्हें अपने प्रति समाज के उपेक्षापूर्ण व्यवहार का सामना करना ही होगा। अंग्रेजी में एक कहावत है–"**Every one is once own enemy**" अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति अपना दुश्मन आप है कोई किसी का भी कुछ नहीं बिगाड़ सकता, जब तक वह स्वयं बिगड़ने या बिगाड़ने को तैयार न हो।

आज यह एक सुखद सच है कि महिला अपनी लाचार और अनगढ़ छवि से निकल रही है। इस संदर्भ में एक दुखद तथ्य जरूर है कि गाँवों में अभी भी महिला उस तरह से आजाद नहीं हो सकी है, जिस तरह नगरों या महानगरों में है। इसके लिये शिक्षा और हमारी संस्कृति को गाँवों तक पहुँचाना होगा। ग्रामीण महिलाओं को इस तथ्य से अवगत कराना होगा कि हमारे इतिहास और पुराणों में भी उनकी मान्यता और उनका आदर बराबरी का रहा है। शिक्षा के प्रसार से ही उन्हें आजादी और स्वावलम्बन मिलेगा। प्रसन्नता का विषय है कि सरकार भी अब इस तरफ जागरूक हुई है और गाँवों में शिक्षा के प्रसार के लिए उसने बहुत सारी योजनाएँ बनाई हैं। बिहार के मुख्यमंत्री ने सरकारी विद्यालयों में साइकिल वितरण करके गाँवों की गली और चौराहों पर भी बालक-बालिकाओं के विद्यालय जाते हुए जत्थे का बड़ा ही मनोरम दृश्य उपस्थित कर दिया है। गाँवों की महिलाओं को कानून की भी थोड़ी समझ की जरूरत है। गाँवों की बहुत सारी महिलायें, जिनकी सुख-सुविधा और संरक्षण के लिए, जो



कानून बनाये गये हैं, उनसे वे अनभिज्ञ हैं। उनकी सुरक्षा के लिए बनाये गए कानूनों को और सख्त करने की जरूरत है। महिलाओं के संरक्षण के लिए घरेलू हिंसा कानून का जल्द ही कार्यान्वयन होना चाहिए।

विवाह-पंजीयन के अनिवार्य बनने से भी महिलाओं में स्वाभिमान और स्वावलम्बन के बीज विकसित हुए हैं। इससे पति और पत्नी दोनों में से कोई भी अब अपने वैवाहिक दायित्व से मुकर नहीं सकता। शारीरिक, मानसिक, शैक्षणिक और आध्यात्मिक तौर पर भी महिलाओं में समझदारी बढ़ रही है। वे अपनी प्रगति का अधिकार, जीवन का कर्त्तव्य, मानव का मूल्य, शान्ति और सुरक्षा की आवश्यकता समझ रही हैं और अन्त:करण से अपने आप को सशक्त करने में जुटी हुई हैं। बहुत सारी रूढ़ियों का विखंडन हो रहा है। उदाहरण के लिए बिहार और उत्तर प्रदेश में नारी के लिए सार्वभौम रूप से पहनावे में साड़ी ही एक मात्र स्वीकार्य वस्त्र थी। आज सबसे पहले इन प्रदेशों में विवाहिता महिलाओं ने इस रूढ़ि को तोड़कर सलवार और कुर्त्ता पहनना शुरू कर दिया है, बल्कि धड़ल्ले से यह परिधान स्वीकृत हो चला है। नगरों में कुछ-कुछ और महानगरों में तो विवाहिता लड़कियाँ अधिकतर जीन्स और पैन्ट का भी नि:संकोच प्रयोग कर रही हैं। बहुत सी महिलायें छोटे-छोटे शहरों में स्कूटर, मोटरसाइकिल चलाकर अपने-अपने काम पर जाने लगी हैं। गाँवों में भी कुछ महिलायें साइकिल की सवारी करने लगी हैं। कहने का मतलब यह है कि बुनाई, कटाई, सिलाई, पेंटिंग, बिन्दी-निर्माण, अचार, पापड़ एवं चटनी बनाना आदि कार्य ही अब महिलाओं तक सीमित नहीं रहा, अब वे केवल घरेलू उद्योग से ही चिपकी नहीं रहीं। आज महिलायें घर के दहलीज से बाहर निकलकर, पुरुषों का पेशा अपनाकर अपने मेहनत के बल पर अपने परिवार का भरण-पोषण

कर रही हैं। कोई 'जिम' खोलकर लड़के-लड़कियों को फिटनेस की ट्रेनिंग दे रही हैं, कोई ड्राईविंग सीखकर लड़कियों को ड्राइविंग सिखला रही हैं। कोई ऑटो चलाकर ऑटो चालक का काम कर रही हैं तो कोई गैस एजेंसी खोलकर परिवार की रोजी-रोटी चला रही है।

बहुत सी पढ़ी लिखी महिलायें सेवा निवृत्ति उपरांत पाठशाला खोलकर झुग्गी-झोपड़ी में रहने वाले गरीब बच्चों को नि:शुल्क शिक्षा दे रही हैं और उनका जीवन संवारने में तथा शिक्षा की ज्योति जलाने में लगी हुई हैं।

नीलू वर्मा ने झारखंड में राँची के समीप एक गाँव में नेत्रहीन नि:शक्त बालिकाओं के लिए नेत्रहीन बालिका विद्यालय की स्थापना की है और इन्होंने नेत्रहीन बालिकाओं की सेवा को अपना धर्म बनाया। इनके निर्देशन में झारखंड का यह पहला एकमात्र विद्यालय है। इस संस्थान का मुख्य उद्देश्य नेत्रहीन बालिकाओं को पूर्ण आत्मनिर्भर बनाना है। आत्मनिर्भर बनाने हेतु यहाँ कई प्रकार के प्रशिक्षण दिये जाते हैं।

चन्दा कोचर आई.सी.आई.सी.आई. बैंक की मैनेजिंग डाइरेक्टर हैं। इसी तरह अनेक बैंकों में महिलायें पदाधिकारी और चीफ ऐग्जिक्यूटिव हैं। शेयर बाजार में कितनी ही महिलायें अपना दखल दे रही हैं और उनके सोच और ताकत के बारे में हम आज कल्पना भी नहीं कर सकते हैं।

निरूपमा राव भारतीय विदेश सचिव के रूप में कार्यरत रहीं हैं। अब ये अमेरिका में भारत की राजदूत हैं। यह नाम पहली महिला का है जो विदेश सचिव रही हैं। ये ऐसी महिला हैं, जो पाकिस्तान जैसे हठीले और जटिल देश से भी महत्त्वपूर्ण राजनीतिक वार्त्ता कर लेती हैं। अगर भारतवर्ष को आगे बढ़ना है तो हमें नारियों के बीच ऐसी सख्शियतों की तलाश करनी ही होगी जो आज की धारा के



विपरीत इतिहास को नई दिशा और नई समझ दे रही हैं। कहावत है कि 'जीत के आगे और हार के पीछे दुनिया रहती है' जो भी महिला जिस भी क्षेत्र में आज आगे आ जाती है, उसके पीछे सारी दुनिया चलने लगती है। मेधा पाटकर के नेतृत्व में 'नर्मदा बचाओ आन्दोलन' देश का सबसे बड़ा गैर सरकारी संगठन बन गया है। जयति घोष जो जे.एन.यू. में 'सेंटर फॉर इकोनौमिक स्टडीज एण्ड प्लानिंग' की चेयर पर्सन हैं, उन्होंने राष्ट्रीय ही नहीं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर उन सारे मुद्दों को उछाला है जो हमारे समाज में गलत आर्थिक नीतियों से पैदा होते हैं।

बंदना शिवा पर्यावरणविद् के रूप में प्रसिद्ध हो गईं। ये सारी महिलायें आज अपनी प्रौढ़ावस्था में अपने-अपने क्षेत्र में अपने बुलंद हौसलों से अपना मुकाम पाकर खुद कामयाबी हासिल कर चुकी हैं। फिल्मों के क्षेत्रों में तो ऐसे कई नाम हैं, जो नारी शक्ति सम्बन्धी अनेक सीरियल बनाकर, उनमें अभिनय कर, नारी-शक्ति के जागरण का शंखनाद कर रही हैं। खेल के क्षेत्र में साइना नेहवाल बीस वर्षीय बैडमिंटन खिलाड़ी हैं। कामनवेल्थ गेम्स के दौरान कृष्णा पुनिया ने चक्का फेंककर गोल्ड मेडल जीता।

अन्ना हजारे के भ्रष्टाचार विरोधी आन्दोलन में मात्र पुरुष ही शामिल नहीं हैं, बल्कि महिलाओं की सहभागिता भी पुरुषों से कम नहीं है। इस आन्दोलन से महिलाओं में पूरी जागृति आयी है। आत्मविश्वास जगा है। सभी महिलायें भ्रष्टाचार दूर करने हेतु दृढ़संकल्प हैं।

इस प्रकार यह कहना असत्य नहीं होगा कि आज जीवन और समाज का ऐसा कोई भी क्षेत्र नहीं है, जहाँ विकास के क्षेत्र में विश्वास के साथ महिलायें अपना नाम दर्ज नहीं कर रही हैं। स्थिति यह है कि अब किसी भी काम के लिए पुरुष मात्र का नाम बहुत

पीछे छूटता जा रहा है। हमें आज इस नारी-शक्ति के जागरण का अभिनंदन करना चाहिए, हौसला आफजाई करनी चाहिए और कहना चाहिए—नारी तुझे सलाम।

❐❐❐

## बदलता परिवेश : नारी संदेश

आज के युग को 'हाई टेक एज' यानी उच्च प्रौद्योगिकी का समय कहा जाता है। आज सब कुछ इतना तेजी से और इस प्रकार बदल रहा है कि हमारे देखते-देखते पुरानी मान्यताएँ, पुरानी परम्परायें, पुराने विचार और पुराने सोच सब कुछ ढहते चले जा रहे हैं। आज इक्कीसवीं सदी की नारी को देखकर कोई भी यह संकल्पना नहीं कर सकता कि आज से पच्चीस-तीस वर्ष पहले यही नारी, अपने व्यक्तित्व के विकास के सम्बन्ध में कहीं-कहीं छिट-पुट ही साहस कर पाती थी। आज नारी की संवेदना, क्षमता, योग्यता और आत्मबल आसमान छू रहे हैं जैसे कोई सोया हुआ सिंह एकबारगी जगकर पूरे जंगल में आपा-धापी मचा दे, पशु-पक्षियों को हतप्रभ कर दे, वैसे ही आज की नारी अपनी सोई हुई शक्ति और आत्म विश्वास को जगाकर ऐसी प्रदीप्त हो गई है कि अब उसे पुरुष का गुलाम या घर की रौनक-मात्र कहकर बहलाया-फुसलाया नहीं जा सकता। आज नारी न तो पुरुष का गुलाम है और नहीं केवल घर की रौनक। तमाम समस्याओं का समाधान उसके हाथ में है और वह देश-विदेश का नेतृत्त्व करने वाली हो गई है।

सच तो यह है कि किसी भी राष्ट्र का उत्थान नारी-जाति के उत्थान से ही संभव है। राष्ट्र की भावी पीढ़ी का निर्माण करने वाली नारी ही है। वही परिवार को भी सुखमय और आनंदमय बनाती है तथा शक्तिशाली और प्रतिभाशाली पुरुषों का सृजन करती है। जनसंख्या की दृष्टि से भी देखें तो पुरुष और नारी दोनों की संख्या प्रायः समान ही है। यह सच है कि नारी की जो अबतक गई गुजरी स्थिति रहती आई है उसकी जिम्मेदारी पुरुष-वर्ग की ही है। पुरुष-वर्ग ने ही अपने अहंकार की आग से उन्हें जलाया है तथा शोषण के चाबुक से उन्हें चोट पहुँचाई है। आज यह कुचली हुई आत्मा और जर्जर काया किसी विशाल भयानक अजगर की तरह 'अंगड़ाई' ले रही है। उज्ज्वल भविष्य की सम्भावना का स्वप्न देखने वाली नारी आज अत्यंत गम्भीरतापूर्वक व्यक्ति और समाज के सामने उपस्थित सभी समस्याओं के समाधान की बात सोचती है। लड़का-लड़की में अंतर जो सदियों से लोक चिंतन पर छाया चला आ रहा था, आज लगभग उसी तरह समाप्त है जिस प्रकार अस्पृश्यता का दानव। लाड़-दुलार, खान-पान, पहनाव-ओढ़ाव तथा शिक्षा-दीक्षा आदि सभी क्षेत्रों में अब लड़कियों को प्राथमिकता दी जाती है। अब उन्हें पराये घर का कूड़ा नहीं समझा जाता है। शिक्षा और स्वावलम्बन की दिशा में अब वे बहुत आगे बढ़ रही हैं और नारी और पुरुष पक्षों के बीच समानता का व्यवहार हावी हो चला है। शिक्षा के क्षेत्र में बाल शिक्षा प्रणाली, जो 'मांटेसरी पद्धति' के नाम से प्रचलित हैं और दुनिया के एक छोर से दूसरे छोर तक इस पद्धति के लाखों बाल विद्यालय चल रहे हैं, को जन्म देनेवाली महिला मांटेसरी इटली के एक गरीब परिवार में जन्मी थी। कहना न होगा कि बाल-शिक्षा के लिए नारी, नारी का स्वभाव, नारी की ममता, नारी का वात्सल्य जितना उपयोगी होता है उतनी अन्य वस्तुएँ नहीं। मांटेसरी जैसी नारी



ने ही बच्चों की शिक्षा के क्षेत्र में अनूठा काम किया। उनकी बाल शिक्षा पद्धति को संसार भर में मान्यता मिली। ऐसे अनेक नाम हैं जो आज के बदलते परिवेश में अपनी शिक्षा से, अपने त्याग से, अपनी सेवाभावना से बहुत सारे ऐसे कार्य कर रही हैं, जो पुरुषों से असंभव है। किसी भी समाज या देश के पास प्राकृतिक साधन अधिक हो सकते हैं, पुरुष वर्ग अधिक सुशिक्षित हो सकते हैं, किन्तु जब तक वहाँ का नारी वर्ग अशिक्षित, असंस्कृत और मूर्ख बना रहेगा तब तक उस समाज को सभ्य और समुन्नत समाज नहीं कहा जा सकता। किसी भी गाड़ी का एक पहिया अगर कमजोर है तो वह गाड़ी नहीं चल सकती।

बदलते परिवेश ने नारी को केवल सुशिक्षित और सभी क्षेत्रों में कुशल ही नहीं बनाया है, वरन् उनमें घर-गृहस्थी संभालने और चलाने की नई खूबियाँ भी लाई है। आज ऐसी बहुत सी औरतें हैं, जो गृहस्थी का काम-काज भी समय से करती हैं और बाहर विभिन्न संस्थाओं में जाकर नौकरी-चाकरी भी करती हैं। सच्ची बात तो यह है कि आज नारी-उत्थान में शिक्षा का जितना योगदान है, उतना अन्य किसी चीज का नहीं। शिक्षा से नारी का स्वभाव बदला है, स्वभाव बदलने से सोच में बदलाव आया है, सोच में बदलाव आने से रूढ़ियों और गलत परम्पराओं के ध्वंस के लिए साहस आया है और तब इस साहस से समर्थ होकर आज नारी जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में अपने अभियान का रथ दौड़ा रही है। आज प्रत्येक नारी जैसे मुक्ति-संग्राम की सेनानी है। उसका शंखनाद मुक्ति का शंखनाद है। बदलते परिवेश में महिला चिकित्सक, प्राध्यापक तथा उच्च प्रशासनिक पदों पर नियुक्त महिलायें अपना दायित्व कुशलतापूर्वक निभा रही हैं।

औरत के लिए दो मोर्चे बराबर खुले रहते हैं। सुबह से ही बच्चों को तैयार कर विद्यालय भेजने के साथ अपने पति की सेवा

चर्या, भोजन पान और उसके बाद, अपनी नौकरी, ये भागमभाग किसी पुरुष से संभव नहीं है। इस रूप में तो आज की नारी सशक्त योद्धा है जो कई-कई मोर्चों पर एक साथ लड़कर अपनी सफलता के झण्डे गाड़ रही है। आज महिलायें अपनी व्यस्तता स्वयं ढूंढ रही हैं। गृह कार्य के अतिरिक्त बहुत सारी महिलायें समाज सेवा में निमग्न हैं। आज कोई भी महिला पति या पुत्र के पास नहीं रहने से असहाय नहीं है। वह अपना मार्ग स्वयं चुनती, बनाती और उस पर आगे बढ़ती है। स्वावलम्बन की दृष्टि से घर-घर में महिलाओं ने गृह-उद्योग चला रखे हैं। आज के परिवेश में महिलायें सिलाई-मशीन, ब्लॉक-पेंटिंग, मोमबत्ती उद्योग, डेयरी एवं पाल्ट्री उद्योग इत्यादि में राशि निवेशित कर कार्य करती हैं। इसकी विशेषता है कि इसमें कम पूँजी और छोटी-छोटी ट्रेनिंग की जरूरत है। साधारण सिलाई मशीन 4000 से 5000 रुपये में मिल जाती हैं। उससे बच्चों के कपड़े बनाकर अपना और अपने आश्रितों का पेट सम्मानपूर्वक पालती हैं। निवेश आज की आर्थिक स्वावलंबन की अद्‌भुत राह बन गई है। इससे आज की नारी की पहचान बनती है। आज महिलायें अनेक प्रकार के घरेलू उद्योगों में अपना पैसा लगाकर अच्छी आमदनी कर रही हैं। बुनाई, सिलाई-कताई, मधुबनी पेंटिंग, बिन्दी निर्माण, पापड़-निर्माण, चटनी-निर्माण, ऐप्लिक आदि कार्य महिलाएँ कर रही हैं। आज महिलायें गर्ल्सहॉस्टल चला रही हैं। विद्यालय, महाविद्यालय चला रही हैं। कोई वृद्धों के लिए 'डे केयर' सेंटर चला रही हैं, कोई रक्त दाताओं के सेंटर खोलकर रक्तदान के प्रति फैली उदासीनता को दूर कर रही हैं और इस प्रकार गाँव एवं शहर का विकास कर रही हैं।

कोई मानसिक रूप से विकलांग बच्चों के लिए एक्टिविटी सेंटर खोलकर विकलांग बच्चों को जीने की नई राह दिखा रही हैं जिससे वे आम बच्चों के साथ समाज में कदम से कदम मिलाकर



चल सकें। अब तो शहर में सिटी बस की कमान भी कहीं-कहीं महिलाओं ने संभाल ली है और वे बसों में कंडक्टर बनकर किराया वसूल रही हैं। कुछ महिलायें समूह बनाकर पेट्रोल पंप और टेन्ट हाउस भी चला रही हैं। आज महिलाओं का जुझारूपन एवं कार्यकुशलता देखने लायक है।

स्वरोजगार के लिए कम्प्यूटर सबसे अच्छा है। इससे घर बैठे ही महिलायें अपना व्यवसाय चला सकती हैं। अभी कुछ वर्षों से महिलायें सौन्दर्य के प्रति इतनी जागरूक हुई हैं कि सौन्दर्य भी व्यापार बन गया है। सौन्दर्य-प्रसाधन बनाने वाली कम्पनियों की होड़ लग गई है। हर जगह ब्यूटी-पार्लर खुल रहे हैं जहाँ महिलायें स्वतंत्र व्यवसाय चला रही हैं। आज भी वे शहनाज हुसैन की तरह किसी संस्थान से ब्यूटिशियन का कोर्स करके सौन्दर्य विशेषज्ञ बन सकती हैं। हेयर स्टाइलिस्ट, मेकअप मैन जैसे किसी पद को प्राप्त कर सकती हैं।

मार्केटिंग जिस पर पुरुष का आधिपत्य था वहाँ भी अब महिलायें पीछे नहीं हैं। बड़े पैमाने पर महिलायें रेडिमेड गॉरमेंट, सौन्दर्य प्रसाधन या जेनरल-स्टोर्स को कुलशलतापूर्वक स्वतंत्र व्यवसाय की तरह चला रही हैं। सेल्स गर्ल्स के रूप में भी कार्य कर रही हैं।

कम पढ़ी-लिखी ग्रामीण महिलायें हस्त करघा, मत्स्य पालन, मुर्गी पालन, मधुमक्खी पालन, डेयरी उद्योग, खिलौना निर्माण जैसे लघु कुटीर उद्योगों को भी अपनाकर स्वावलम्बी बन सकती हैं और अपने परिवार, शहर और गाँव का विकास कर सकती हैं। इसके लिए बैंकों द्वारा ऋण भी उपलब्ध कराये जा रहे हैं जिससे बड़ी संख्या में महिलायें लाभान्वित हुई हैं।

इसके अलावा बागवानी भी स्वरोजगार की दृष्टि से काफी महत्वपूर्ण है। इसके तहत फल-फूल, सब्जी एवं औषधीय पौधों की खेती की जा सकती है। इससे धन का उपार्जन होगा, पर्यावरण की

सुरक्षा होगी और समय का भी सदुपयोग होगा। बागवानी के शौक को भी स्वतंत्र व्यवसाय का रूप दिया जा सकता है।

राज्य में महिला उद्योग संगठन द्वारा प्रतिवर्ष राज्यस्तरीय उद्योग मेले का भी आयोजन किया जाता है जिसके तहत महिलाओं द्वारा निर्मित वस्तुओं की बिक्री-सह प्रदर्शिनी लगाई जाती है जिससे महिलाओं को इस क्षेत्र में आगे बढ़ने के लिए काफी प्रोत्साहन मिलता है और वे लाभान्वित भी होती हैं। आज की हर नारी ऐसे कौशल में निपुण है जिससे उसके परिवार का अच्छी तरह से भरण-पोषण हो सकता है। मेरे पड़ोस में एक महिला है वह लगभग अशिक्षित है। उसका पति मजदूरी करता है। लेकिन उसके बच्चों का रहन-सहन, बोल-चाल, पोशाक-पहनावा देखकर यह नहीं कहा जा सकता है कि ये बच्चे किसी अशिक्षित मजदूर परिवार के हैं। कारण क्या है ? मैंने एक दिन उस महिला से पूछा कि ''तुम अपने पति की मजदूरी मात्र से कैसे अच्छा खाती-पीती और पहनती हो, तथा अपने बच्चों को कैसे अच्छा खिलाती-पिलाती तथा पहनाती-ओढ़ाती हो ? तुम्हारे पास सुख के सभी साधन जैसे गैस चूल्हा, रेडियो, टी.बी. भी है, सो कैसे ? उस महिला ने बताया कि–''मैं सिलाई का काम तथा साड़ी फॉल लगाने एवं पीको करने का काम करती हूँ। बेल-बूटे भी काढ़ती हूँ। इतना ही नहीं, पढ़े-लिखे परिवार की लड़कियाँ मुझसे सिलाई-कढ़ाई सीखने भी आती हैं और मैं उन्हें सिखलाने का शुल्क लेती हूँ। इस तरह मैं घर में बैठे-बैठे इज्जत से सौ-सवा सौ रुपये प्रतिदिन कमा लेती हूँ। लड़कियाँ मेरा आदर-सम्मान भी करती हैं। अगर मैं थोड़ी पढ़ी-लिखी होती तो मैं विद्यालय खोलकर सिलाई-कढ़ाई का लड़कियों को प्रशिक्षण भी देती।'' मैं तो सुनकर चकित रह गई। इस तरह, अनेक स्त्रियाँ निम्नवर्ग से होकर भी स्वावलम्बी बन रही हैं और अपने परिवार का भरण-पोषण कर रही हैं। स्वावलम्बन की



दृष्टि से घर-घर में गृह-उद्योगों का प्रचलन हो गया है। अधिकांश नारी इस कौशल में निपुण हो गई हैं। उनकी बेकारी और गरीबी दूर हो गई है। इससे परिवार की आय भी बढ़ती है और आत्म-विश्वास भी बढ़ता है। नारियों के हित में कुटीर उद्योग तो विकसित हो ही रहे हैं। आवश्यकता इस बात की है कि कुटीर-उद्योगों को बाजार मुहैया कराने में सरकार भी अपनी ओर से मदद करे। मधुबनी जिले में निर्मित मधुबनी पेंटिंग के लिए प्रख्यात महासुन्दरी देवी को 26 जनवरी 2011 के गणतंत्र दिवस के अवसर पर 'पदम्श्री' के पुरस्कार से केन्द्र सरकार ने हाल ही में सम्मानित किया है। यह मधुबनी जैसे बाढ़ पीड़ित और बहुत मामले में पिछड़े क्षेत्र के लिए गौरव का विषय है। आज नारी हर स्तर पर गलत परम्पराओं, कुरीतियों, अन्धविश्वासों और अनैतिकताओं से जूझ रही है और समाज को आगे बढ़ाने में नारी-जागरण का शंखनाद कर नारी-शक्ति को संगठित कर रही है। नारी की वर्त्तमान मानसिक स्थिति का परिमार्जन हो रहा है। पीढ़ियों से उसके मन में जमी हुई हीनता की भावना समाप्त हो रही है–**''पराधीन सपनेहु सुख नाही''** वाली बात समाप्त हो रही है और वह विश्वास पूर्वक, कुशलतापूर्वक हर दायित्वों का पालन कर रही है।

आज हमें नारी के इस बढ़ते हुए कदम का स्वागत करना है, साथ ही यह सावधानी भी रखनी है कि महिलायें पुरुषों की प्रतियोगिता में अपनी संस्कृति, अपना कर्त्तव्य, अपना पारिवारिक दायित्व और सामाजिक शील को भी दरकिनार न करें। स्वतंत्रता के उपभोग से अधिक उपयोग के लिए सक्रिय होना चाहिए। आज हमारी बहू-बेटियाँ घर से निकलकर विद्यालयों में, बैंकों में, निजी संस्थानों में, अस्पतालों में अनेक प्रकार के सरकारी कार्यालयों में काम करती हैं। बेटी जो पढ़ने भी जाती है वह भी घर से कई घण्टों के लिए

बाहर रहती है। ऐसी स्थिति में अभिभावक को अपना यह कर्त्तव्य नहीं भूलना चाहिए कि वे कम-से-कम इस बात का तो ख्याल रखें ही कि उनके घर आने पर उनसे उनका कुशल मंगल पूछते हुए उनकी दिनचर्या के सम्बन्ध में सहज भाव से प्रसन्नतापूर्वक जिज्ञासा करें। इतना ही करना उन्हें अपने रूटीन के प्रति सावधान और सचेत अवश्य रखेगा। यह सत्य है कि वयस्कों द्वारा स्वावलम्बी बहू-बेटियों के लिए अधिक टोका-टोकी उन्हें खिझा देती है। खासकर, तब, जब कि अभिभावक एक अनुशासक की तरह पूछना शुरू करते हैं।

इसलिए प्रेमपूर्वक ऐसे ही प्रश्न करने चाहिए जो उन्हें रुचिकर हो। आज आवश्यकता इस बात की है कि हम जो भी करें उसे मधुर भाव से। पहले पच्चीस वर्षों में कोई स्थिति या रूढ़ि टूटती थी या बदलती थी। बीसवीं सदी के अन्त तक रूढ़ियों और स्थितियों के बदलने की कालावधि दो-तीन वर्षों की अवधि हो गई और अब इक्कीसवीं सदी में तो प्रत्येक दिन नई बात, नया विकास, नई चीज और नये विचार टूटते और बदलते हैं। ऐसी स्थिति में हमारा कर्त्तव्य बनता है कि हम अत्यन्त ही सावधानी से अपने बच्चों की स्वतंत्रता का संरक्षण करें। वैसे ही जैसे कछुए के बच्चे को पता नहीं चलता कि उसकी माँ उसपर नजर रखे हुई है लेकिन कछुए का बच्चा अपने माँ-बाप की दूर दृष्टि से ही पलता रहता है। कछुए की माँ जल में रहती है और उसका बच्चा जमीन पर और वैसे ही उसका विकास होता रहता है।

अश्लील संगीत, साहित्य और चित्रों से बच्चों को दूर रखना है। टी.भी, फिल्मों एवं अन्य गलत संचार माध्यमों के लिए इसी रूप में निगहबानी करनी है।

यह प्रसन्नता का विषय है आज घर में, परिवार में और समाज में महिलायें हर तरह से समझदार और विश्वस्त हो रही हैं।



आज कहीं भी अहमियत 'काम' की है 'जेन्डर' की नहीं। अगर लोगों में राजा रवि वर्मा और एम.एफ हुसैन जैसे कलाकारों के लिए सम्मान है तो अमृता शेरगिल और अंजली इला मेनन की भी प्रशंसा होती है।

मैंने पहले ही कहा है कि स्वतंत्रता का उपयोग आवश्यक है। इसलिए कि समाज में जितने बन्धन हैं, उतनी ही आजादी भी है। इतना तो किसी महिला को सोचना या करना ही होगा कि कैसे काम करने में उसे सहज आजादी मिल सकती है। उदाहरण के लिए बहुत सारी ऐसी कलाएँ हैं जिन्हें घर बैठकर भी महिलायें पूरा कर सकती हैं। दूसरी बात परम्परा से जो कार्य घर में होते आ रहे हैं उन्हें भी करने में महिलाओं को आजादी रहती है। एचसीएल के संस्थापक अरबपति शिव नादर की पुत्री रोशनी नादर ने अपनी पहली नौकरी की शुरुआत न्यूज चैनल से की। इसके बावजूद अपने पिता के इच्छा जाहिर करने पर उसने मैनेजमेन्ट में ग्रेजुएशन किया और सत्ताइस साल की उम्र में ही एचसीएल ग्रुप के सी.ई.ओ. का उत्तरदायित्व संभाल लिया। जयन्ती चौहान, निशा गोदरेज आदि ऐसी अनेक महिलायें हैं, जिन्होंने अपने परिवार को बढ़ाने में मदद की।

प्रश्न हो सकता है कि ऐसी अधिकतर महिलाओं का 'बेस' मजबूत होता है और जो सुखी-सम्पन्न घराने की होती हैं, वही आगे बढ़ती हैं। केवल ऐसी बात नहीं है। ऐसी भी स्त्रियाँ हैं जिन्होंने स्वयं संघर्ष किया है और केवल गरीबी ही नहीं, वरन् परिवार और समाज की दरिंदगी से लोहा लेकर समाज की अग्रणी बन गई हैं और समाज को एक नया रूप दिया है।

ऊपर मैंने महासुन्दरी देवी का नाम लिया है और यहाँ सीताताई नाम की एक ऐसी स्त्री का नाम ले रही हूँ जिनके सम्बन्ध में शशि कला राय ने 'हंस' के जनवरी-2011 अंक में एक अच्छा-खासा निबंध , उनका इन्टरव्यू लेकर लिखा है। ये सीताताई अपने पति की दरिंदगी

एवं प्रताड़ना से ऊबकर घर से नवप्रसूता के रूप में निकलीं। भिखारियों के बीच में जिन्दगी गुजारीं लेकिन भीख मांगकर भी अपने हिस्से का भोजन रखकर अपने सारे पैसे और सामान अन्य भिखारियों में बांटती रहीं। आज ये इतनी समर्थ हो गई हैं कि किसी भी स्टेशन के बाहर इनकी गाड़ी देखी जा सकती है, जिसमे से निकलकर ये कहती हैं–''अगर मेरी जरूरत किसी को है तो बोलो, मेरे साथ चलो।'' जब लोगों ने इनका सम्मान किया, प्रशस्ति पत्र दिया तो जिस गाँव से ये भगाई गई थीं, उसी गाँव ने आज इन्हें फिर सम्मानित भी किया है। ये अपने चालीस वर्ष पुराने तथाकथित पति को भी आश्रय दिए हुई हैं और उन्हें मनुष्य बना रही हैं। यह है नारी का बदलता हुआ परिवेश।

❐❐❐

# पर्दे का टूटता तिलस्म

एक समय था, जब भारत की नारियाँ 'पर्दे की रानी' मात्र थीं। आज यही नारी अनेक क्षेत्रों में अपनी सफलता के झंडे गाड़ रही है और स्वावलम्बन की ध्वजा फहरा रही है। पर्दा प्रथा का अभिशाप हमारे देश में तब शुरू हुआ, जब मुसलमान आक्रान्ताओं ने भारत वर्ष के शील, सभ्यता, संस्कृति और सम्मान को झिझोरना शुरू किया। किसी भी राष्ट्र और किसी भी देश का गौरव और श्रृंगार नारी होती है। नारी ही किसी देश का सम्मान और प्रतिष्ठा है। अंग्रेजों ने अपनी नारियों के प्रति जो आदर भावना व्यक्त की है वह उन्हीं की इस कहावत से भी चरितार्थ होती है 'Ladis first' यानी किसी भी कार्य में महिला को प्राथमिकता दो। उसे ससम्मान आगे बढ़ाओ। यह सही है अंग्रेजों ने भी कुछ ऐसे आचरण जरूर किये जो हमारी भारतीय महिलाओं के साथ अप्रतिष्ठा और असम्मान के थे लेकिन ये वस्तुतः अंग्रेजी संस्कृति और शालीनता के प्रतिनिधि नहीं थे। जिन अंग्रेजों ने पराधीन भारतीय स्त्रियों के साथ ऐसा व्यवहार किया, वे विशुद्ध अंग्रेज तो नहीं ही थे, जिन्हें 'टामी' इत्यादि कहा जाता था, ऐसे अन्य किस्म के अंग्रेजों ने ही ऐसे आचरण किये। कई अंग्रेजों ने हमारे यहां

की नारियों को सम्मान भी दिया और दिलाया। उनके समय में जो भारतीय नारियाँ योग्य थीं विशेषकर शिक्षा अथवा राजनीति में काम करने योग्य थीं, उन्हें आगे बढ़ने में उन्होंने मदद भी की। सती-प्रथा, दहेज-प्रथा, बालविवाह इत्यादि कुप्रथाओं को दूर करने में भी उन्होंने काफी योगदान किया। इन्हीं कुप्रथाओं में से एक पर्दा-प्रथा भी थी। अंग्रेजों के समय हमारी भारतीय महिलायें निश्चित रूप से उतनी भयभीत नहीं थीं या उन्हें अपनी लज्जा के छीने जाने का उतना भय नहीं था जितना मुसलमानों के समय में।

पर्दा-प्रथा तो मुसलमानी सल्तनत काल की देन है। राजपूतों के अवसान के बाद, पृथ्वीराज चौहान के पतन के बाद पर्दा-प्रथा का प्रारंभ हमारे यहाँ अनिवार्य रूप से हुआ। अपनी बहू-बेटियों की सुरक्षा और संरक्षण के लिए भी हिन्दुओं ने ऐसा किया और कुछ मायने में मुसलमानों के यहाँ पर्दा प्रथा का प्रचलन था, इसलिए उसके अनुसरण में भी किया। निश्चित रूप से इस पर्दा-प्रथा ने हमारी महिलाओं की प्रतिभा और उनकी योग्यता का गला घोंट दिया। भारतीय नारी के लिये जब पर्दा प्रथा आरंभ हुई, वह उसके लिए एक अन्धकार काल था। नारी मात्र घर की वस्तु मानी जाने लगी। उसे घर से बाहर निकलने के लिये न तो स्वतंत्रता ही प्राप्त थी और न अभिभावकों की इजाजत।

आज घरेलू जीवन की जटिलतायें और दैनिक जीवन की आवश्यकतायें दिनानुदिन बढ़ती ही जा रही हैं और इन आवश्यकताओं की पूर्ति के क्रम में पुरुष सदस्य दिन भर कोल्हू के बैल के समान एक ही कार्य के सम्पादन में घूमते रहने पर भी परिवार की आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर पाते। रामवृक्ष बेनीपुरी ने एक स्थल पर लिखा है–**''पुरुष द्वार का रौनक है तो स्त्री घर का चिराग।''** मैं इस सद्-उक्ति को स्वीकार करते हुए भी अपनी बात कहना



चाहती हूँ कि घर का चिराग होना तो ठीक है, घर में भी प्रकाश आवश्यक है लेकिन इसके साथ ही सड़क पर भी तो अन्धेरा नहीं रहना चाहिए। मंदिरों में भी तो दीप जलने चाहिए। ऐसे वाक्यों से नारी के गार्हस्थ्य धर्म सम्पादन की पुष्टि भले ही होती हो, परिवार-संचालन की कुशलता भले व्यक्त होती हो लेकिन इनसे उनकी आन्तरिक शक्तियों का विकास तो नहीं ही हो पाता है। परिवार की चहारदीवारी से महिलाओं को निकालकर, उनके योग्य कार्यों में उन्हें लगाकर परिवार की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ बनाई जा सकती है। यह तो और भी विडम्बना है कि उच्च घराने की महिलाओं के लिए पर्दा-प्रथा का चलन विशेष रहा है, जिससे उनके खानदान का बड़प्पन एवं प्रतिष्ठा बनी रहे। हम सभी जानते हैं, हमारे देश में पालकी या डोली का प्रचलन बहुत प्राचीन है जिसका उपयोग, प्रतिष्ठित घराने की महिलायें पर्व-त्योहर पर या सगे सम्बन्धियों के यहाँ जाने के समय या बाहर निकलने के समय करती थीं। सच तो यह है कि पर्दा-प्रथा की जड़ में अशिक्षा ही है। जो परिवार जितना ही अशिक्षित रहा है उसमें पर्दे की प्रथा विशेष रूपसे देखने को मिली है। छोटे तबके के परिवारों में तो अब सर्वत्र देखने को मिल रहा है कि घर की औरतें घर से बाहर निकलकर खेती-मजदूरी और हाट-बाजार करती हैं और अपनी आवश्यकताओं की पूर्त्ति के लिए पति-पत्नी दोनों मिल-जुल कर काम करते हैं। अब मध्यम एवं उच्च वर्ग के परिवार की औरतें भी घर से बाहर निकलकर नौकरी पेशे से जुड़ी हुई हैं और परिवार की आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ बनाने में अपना पूरा योगदान कर रही हैं। अब बालिकाओं की शिक्षा पर भी पूरा ध्यान दिया जा रहा है और यह शायद ही देखने में आता है कि किसी भी परिवार की कोई भी बालिका पढ़ी-लिखी नहीं हो। समाज में फैली कुरीतियों को, जैसे दहेज-प्रथा, बाल-विवाह, सती-प्रथा, विधवापन आदि को शिक्षित

लड़कियाँ मजे में दूर कर रही हैं। इन गलत परम्पराओं में सुधार हो, इसके लिए प्रयास कर रही हैं और स्वस्थ तथा सुंदर समाज का निर्माण कर रही हैं। 'पर्दे की रानी' पर्दे के बाहर आकर अब 'आधी दुनिया' कहला रही हैं और अब यह 'आधी दुनिया' अपने पर्दे को हटाकर, सिर उठाकर हर क्षेत्र में पुरुषों के साथ कदम से कदम मिलाकर काम ही नही कर रही हैं बल्कि उनसे भी आगे बढ़ती नजर आ रही हैं। धीरे-धीरे महिला उत्थान के लिए किये गये विभिन्न कार्यों में नवचेतना का जागरण होने लगा और बीसवीं शताब्दी के आते-आते एक सशक्त आन्दोलन की शुरुआत हुई। महिलाओं को घर की चहारदीवारी से निकलकर जब बाहर आने का मौका मिला तब इन्होंने विभिन्न आन्दोलनों में भी भाग लेना शुरू किया। बीसवीं शताब्दी के आते-आते नारी स्वातन्त्र्य का सशक्त आन्दोलन शुरू हुआ और इसी क्रम में नारियों ने पर्दे की छुट्टी कर दी–**''अलविदा पर्दा, तू ही ने कर दिया बेपर्द था, हाय तेरे, रोग से, चेहरा हमारा जर्द था।''** अपने सामाजिक जीवन की पिछड़ी हुई दशा को सुधारने में पर्दा प्रथा के उन्मूलन ने नारियों के लिए बहुत बड़ा योगदान किया। अशिक्षा को दूर करने में तो इसका बहुत बड़ा हाथ है। इतना ही नहीं महात्मा गांधी ने 'भारत छोड़ो आन्दोलन' के समय कांग्रेस के अनेक कार्यकर्त्ताओं से अपनी-अपनी स्त्रियों को पर्दे से बाहर लाकर स्वातंत्र्य-संग्राम में भाग लेने का आह्वान किया था। अनेक कांग्रेसी कार्यकर्त्ताओं ने खादी के प्रचार के लिए अपनी-अपनी पीठ पर अपनी-अपनी स्त्रियों के साथ खादी का गट्ठर लेकर बेचने का कार्य शुरू किया। आह्वान पूर्वक सर्वप्रथम महात्मा गांधी ने ही 'पर्दे की इस तिलस्म' को तोड़ा। स्त्री शिक्षा का प्रचार हो एवं पर्दा-प्रथा का अन्त हो, इसके लिए ही 'लेडी इरविन कालेज' की स्थापना दिल्ली में की गई थी। बहुत सारे संघर्षों का सामना कर, इन



संस्थाओं ने अन्य संघों एवं महिला-मंडलों से सहयोग प्राप्त कर स्त्रियों की दशा में सुधार लाने के लिए अनेक सराहनीय कार्य किये। स्त्रियों में ऐसी जागृति आई कि उन्होंने बाहर निकलकर महात्मा गांधी के विभिन्न सत्याग्रह आन्दोलनों में भाग लेना शुरू किया। सत्याग्रहों में भाग लेने के कारण काफी संख्या में महिलाओं को भी गिरफ्तार किया गया जिनमें श्रीमती स्वरूप रानी, विजय लक्ष्मी पंडित, कमला नेहरू, श्रीमती सरोजिनी नायडू, निलीमा सेन गुप्ता, श्रीमती कस्तूरबा, सुचेता कृपलानी, अरुणा आसफअली, राजकुमारी अमृत कौर, कमलादेवी चट्टोपाध्याय आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

जहाँ तक स्वातंत्र्य आन्दोलन का प्रश्न है उसमें पर्दा-प्रथा को उच्छिन्न कर आगे बढ़ने वाली नारियों ने भी इसमें उत्साहपूर्वक योगदान किया। इसी के परिणाम स्वरूप 1947 में देश आजाद हुआ और भारत के नये संविधान का सृजन किया गया। संविधान में भारतीय महिलाओं का स्थान बहुत ऊँचा रखा गया और उन्हें हर क्षेत्र में सम्मान मिले इसका पूरा ख्याल रखा गया। स्वतन्त्रता के बाद हमारे देश का चतुर्दिक विकास हुआ। पर्दा-प्रथा से मुक्त होने के कारण ही भारतीय महिलाओं ने विकास कार्यों में पूर्ण रूप से सहयोग दिया।

आज हमारे देश में पर्दा-प्रथा का लगभग उन्मूलन हो चुका है। कहीं भी, किसी भी क्षेत्र में पर्दा-प्रथा का अस्तित्व न के बराबर दिखाई पड़ता है। अगर कहीं है भी तो ऐसी महिलाओं के साथ, जो आज के समय से बहुत पीछे छूट गई हैं। आज चाहे महिला धनी घर की हो, मध्यम वर्ग की हो या आर्थिक दृष्टिकोण से पिछड़ी हुई हो, आवश्यकतानुसार घर की चहारदीवारी से बाहर निकलने के लिए ये पूरी तरह से सक्षम हो गई हैं। अब उन पर इस तरह का कोई भी बंध न परिवार का नहीं रह गया है कि वे पर्दा-प्रथा को अपनाकर अपना और अपने बच्चों का भविष्य अंधकारमय बना लें। आज की महिला

घर का चिराग ही नहीं है बल्कि वह अपने भीतर उत्साह और साहस की ऐसी प्रज्जवलित आग रखती है जिसकी सामर्थ्य देखकर पुरुष भी भाग जायें। आज की महिला घर की चहारदीवारी तोड़ चुकी है, अपनी असमर्थता की सारी जंजीरें तोड़ चुकी है और अपने नाम पर 'अबला' का कलंक लगे हुए कालिख को मिटा चुकी है। वह सारी कुरीतियों से, गलत परम्पराओं से लोहा लेने को तैयार है। हर क्षेत्र में पुरुषों के साथ कंधा से कंधा मिलाकर परिवार, समाज एवं राष्ट्र के निर्माण में पूरा सहयोग देने को तत्पर है। अब उसके लिए मैथिलीशरण गुप्त की यह पंक्ति–**''अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी''** प्रसंग बाह्य हो गई और जयशंकर प्रसाद की यह पंक्ति चरितार्थ हो रही है–**''नारी तुम केवल श्रद्धा हो, विश्वास रजत नग पग तल में''**। पर्दे को फाड़कर आज की महिला में जो शिक्षा का प्रकाश आया है, उसी विश्वास के साथ वह सहर्ष आगे बढ़कर कुरीतियों का नाश करने को तैयार है। आज–उच्च शिक्षा प्राप्त कर अनेक लड़कियाँ भारतीय एवं राज्य स्तर की प्रतियोगिता परीक्षाओं में प्रथम स्थान प्राप्त कर रही हैं और उच्च प्रशासनिक पदों पर नियुक्त हो रही हैं। चिकित्सा के क्षेत्र में भी इनकी संख्या काफी है। कृषि, पशुपालन उद्योग, प्रबन्धन, इन्जीनियरिंग और कम्प्यूटर के क्षेत्र में भी लड़कियाँ काफी संख्या में प्रवेश ले रही हैं और उत्साहवर्द्धक रूप से कामयाबी भी हासिल कर रही हैं। विज्ञान और टेक्नॉलोजी तथा सूचना और संचार क्रान्ति ने फैशन डिजाइनर, मॉडलिंग, वायोटेक्नॉलोजी, फोटोग्राफी, रंगमंच, पत्रकारिता और लेखन जैसे अनेक क्षेत्र प्रदान किये हैं। जहाँ पैसा भी है, शोहरत भी है और स्वरोजगार की दृष्टि से काफी महत्त्वपूर्ण है। समाज के हर क्षेत्र में महिला की भागीदारी बढ़ रही है। ये अपने कार्य को पूरी ईमानदारी तथा निष्ठा के साथ निभा रही हैं। पर्दा–प्रथा की सन्ध्या आ चुकी है। नारी–सशक्तीकरण का विहान हो



गया है और नवयुग आह्वान कर रहा है कि नारी अब लाचार नहीं रही। पुरानी कुरीतियाँ समाप्त हो चुकी हैं। देश के कोने–कोने में, गाँव–गाँव में पर्दा–प्रथा में आग लग चुकी है और स्त्री पुरुष दोनों मिलकर इस स्वतंत्रता से अपना भाग्य जगा रहे हैं। हमारा देश शान्ति और सदभावना की ज्योति से जगमग हो रहा है।

हमें यह कहना है कि आप जरा आँख खोलकर देखें और हृदय पर हाथ रखकर सोचें कि इस पर्दा–प्रथा के उन्मूलन से नारी रूप में व्यक्ति, परिवार, समाज और राष्ट्र का कितना कल्याण हुआ है। 'चन्द्रकान्ता' उपन्यास में हम पढ़ते हैं कि राजा वीरेन्द्र सिंह ने कल घुमाया और किसी सिंह के पेट में चले गये। सिंह के पेट का जब तिलस्म तोड़ा तो खुले मैदान में आ गये और जब पूरा तिलस्म तोड़ दिया तो हजारों, लाखों मूल्य की धन–सम्पदा और जवाहरात उन्हें प्राप्त हुए। यह प्रसंग मैंने इसलिए उपस्थित किया कि आज की नारी बाबू देवकीनन्दन खत्री के 'चन्द्रकान्ता' उपन्यास का वही राजा वीरेन्द्र सिंह है, जिसने पर्दा–प्रथा के सिंह रूपी तिलस्म का पेट फाड़ा और स्वतंत्रता के मैदान में आ गई है और इस प्रकार अपनी असफलताओं और असमर्थताओं के सारे तिलस्म तोड़कर वह आज अनेक प्रकार की सुख–समृद्धि का अपने मजबूत हाथों से उपभोग कर रही है।

❐❐❐

# संस्कृति-स्वास्थ्य

स्वस्थ समाज और सुसंस्कृत मानवता के लिए यह आवश्यक है कि मानव का निर्माण करने वाली जननी का स्वास्थ्य उत्तम रहे। Sound mind in sound body कहावत प्रसिद्ध है तो इसी तर्ज पर हम यह भी कह सकते हैं कि Sound Lad by Sound Lady. यह तो प्रत्यक्ष ही है कि विगत कुछ दशकों से महिलायें हर क्षेत्र में कामयाबी का झण्डा बुलंद कर रही हैं। जो क्षेत्र पुरुषों के लिए सुरक्षित माने जाते थे, उन क्षेत्रों में भी आज महिलायें कामयाबी हासिल कर पुरुषों के साथ कदम से कदम मिलाकर ही नहीं चल रही हैं बल्कि उन्हें एक नई राह भी दिखा रही हैं। सिविल सेवा, पुलिस सेवा, बैंकिंग, अनुशासन-प्रशासन, शिक्षण-प्रशिक्षण, निर्देशन, चिकित्सा, अभिनय, कृषि, अन्तरिक्ष-भ्रमण, आकाश-गमन, पर्वतारोहण, खेलों की दुनिया, मनोरंजन की दुनिया, समाज सेवा, सब पर ये अपनी उपलब्धियों एवं हौसले का मिसाल पेश कर रही हैं। ऐसा लगता है कि मानो महिलायें अर्द्धांगिनी और जीवन संगिनी के शाब्दिक अर्थ को व्यावहारिक धरातल पर उतारने लगी हैं। कवयित्री महादेवी वर्मा ने अपने एक निबंध में महिलाओं के लिए 'घर और बाहर' का जो स्वप्न खड़ा किया था वह रूपायित होता हुआ प्रतीत होता है।

इतना होते हुए भी वर्त्तमान परिपेक्ष्य में महिलाओं के संदर्भ में सबसे अधिक चिन्तनीय विषय यह है कि स्वास्थ्य के क्षेत्र में महिलायें अभी भी काफी पिछड़ी हुई हैं। इस ओर इनपर जितना ध्यान दिया जाना अपेक्षित है उतना न कभी दिया गया है और न दिया जा रहा है जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि यदि हम औसत महिला की स्थिति की जाँच करें तो एक निराशावादी तस्वीर ही उभर कर सामने आयेगी। यदि हम गौर करेंगे तो पायेंगे कि बालक की अपेक्षा बालिकाएँ ज्यादा रोगग्रस्त होती हैं और बालकों की अपेक्षा बालिकाओं की मृत्यु-दर भी अधिक है। बालकों की अपेक्षा बालिकाओं के पालन-पोषण पर, दैनिक खान-पान पर कम ध्यान दिया जाता है जिससे इनमें पोषक तत्त्वों का अभाव पाया जाता है। परिवार में बेटा-बेटी में भेद-भाव का वर्ताव आज भी परिवार एवं समाज में यथार्थ बना हुआ है। बचपन से ही बालिकाओं पर घरेलू कार्यों का अत्यधिक बोझ लाद दिया जाता है। परिवार में उनके लिए शिक्षा का कोई विशेष महत्त्व नहीं है।

कम उम्र में ही बालिकाएँ ब्याह दी जाती हैं। कम उम्र से ही प्रजनन की बड़ी जवाबदेही अपने कंधे पर उठाती हैं। बच्चों के जन्म का अन्तराल भी बहुत कम ही रहता है। भ्रूण-पालन में अपना स्वास्थ्य और सौन्दर्य गंवाती हैं। स्तन-पान से कम उम्र में ही शरीर खोखला हो जाता है। कम उम्र से ही इन्हें माता और गृहिणी की भूमिका निभानी पड़ती है। प्रत्येक परिवार में प्रायः यह देखा गया है कि महिलायें पहले सम्पूर्ण परिवार को भोजन कराती हैं और सबके भोजन करने के बाद में वे स्वयं भोजन करती हैं। इस प्रकार त्याग, तपस्या, समर्पण एवं सेवा भाव की भावना बालिकाओं में छोटी उम्र से ही भर दी जाती है।

रजोधर्म के आरंभ होने पर गलत पारम्परिक मान्यताओं के चलते इन्हें अनेक प्रतिबंधों का पालन करना पड़ता है। अन्धविश्वास, कुरीतियाँ, गलत परम्पराओं, रूढ़ियों, दहेज प्रथा के विभत्स रूप का महिलाओं के स्वास्थ्य पर बहुत ही गलत प्रभाव पड़ता है। यदि परिवार में पति को नशे की लत हो तो फिर इसका दुष्परिणाम भोगने के लिए पत्नी को तैयार रहना है। महिलाओं को स्वस्थ रखने के लिए परिवार एवं समाज को रूढ़िवादिता एवं अन्धपरम्पराओं की संकीर्णता से, अशिक्षा और अज्ञान के अंधकार से उबारना होगा। महिलाओं में आत्मविश्वास जागृत करना होगा। पिछड़ेपन से मुक्ति दिलानी होगी। इसके लिए महिलाओं को भी स्वंय सक्रिय होना होगा। अपने आप को मजबूत बनाना होगा। जब तक शिक्षा, स्वावलम्बन एवं मानवीय मूल्यों का माहौल परिवार में संतुलित नहीं होगा, बालिकाओं को बालकों की तरह पूर्ण आजादी एवं स्वतंत्र वातावरण नहीं मिलेगा तब तक महिलाओं की स्वास्थ्य-समस्या का समाधान नहीं हो सकेगा। बचपन से ही बालिकाओं को परिवार में ऐसा माहौल मिलता है कि वे अपने को हीन समझने लगती हैं। हीन ग्रंथियों से ग्रसित होकर अपने लिए कुछ भी नहीं सोचती हैं।

सदियों से ऐसा होता आ रहा है कि अक्सर महिलायें अपने परिवार, पति और बच्चों के खान-पान का तो पूरा ध्यान रखती हैं लेकिन इस मामले में स्वयं का ख्याल नहीं रखती हैं। खुद के स्वास्थ्य की अनदेखी करती हैं। महिलाओं के अस्वास्थ्यकर स्थिति से मात्र महिलाएँ ही प्रभावित नहीं होती हैं बल्कि इसका गंभीर प्रभाव सम्पूर्ण परिवार, बच्चों, समाज और देश पर पड़ता है। ग्रामीण क्षेत्रों की स्थिति तो और भी सोचनीय है। आज भी ग्रामीण इलाकों में लड़कियों एवं महिलाओं के खान-पान पर ध्यान नहीं दिया जाता है। इस मामले में गाँवों से शहरों की स्थिति अच्छी है। लेकिन शहरी इलाकों में



कामकाजी महिलाओं के व्यस्त जीवन-शैली के कारण उनके पोषक-स्तर में दिनोदिन गिरावट आ रही है। कामकाजी महिलाओं को तनाव का अत्यधिक सामना करना पड़ता है। ऐसे तो दुनिया भर में सभी महिलाओं को तनाव का सामना करना पड़ता है। लेकिन भारतीय महिलायें अधिकांश समय तनाव में रहती हैं। अधिक तनाव की वजह यह है कि एक साथ उन्हें कई तरह की भूमिकाएँ जैसे-बच्चों, घर, कार्यालय की निभानी होती है। आजकल महिलाएं कम्प्यूटर पर पूरा-पूरा दिन काम करती हैं। लगातार कम्प्यूटर पर झुककर काम करने से गले की नसें सिकुड़ने लगती हैं। इससे गले और कंधों को भी नुकसान पहुँचता है। चेहरे का स्कीन सूखने लगता है और आँखों के नीचे कालापन आ जाता है। अतः कम्प्यूटर पर ज्यादा देर तक लगातार नहीं बैठना चाहिए। बीच-बीच में आधे-आधे घंटे में ब्रेक लेकर टहलना चाहिए और गले को घूमाना चाहिए।

कामकाजी महिलाओं को दोहरा काम करना पड़ता है। एक तरफ घर और बच्चों को सम्भालना और दूसरी तरफ कार्यालय का काम करना। दोहरी जवाबदेही होने के कारण इनका जीवन अस्त-व्यस्त तथा इन्हें आराम एवं फुर्सत का समय कम रहता है। इसलिए ये अपने स्वास्थ्य पर ध्यान नहीं दे पाती हैं। लेकिन काम और स्वास्थ्य दोनों का संतुलन बनाकर रखना ही होगा ताकि वे अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखते हुए घर और कार्यालय के दायित्वों का समुचित निर्वाह कर सकें।

प्राकृतिक रूप से महिलाओं को जीवन में जिन समस्याओं से जूझना पड़ता है उनमें मासिक धर्म प्रमुख है। किशोरियों को मासिक धर्म के बारे में तथा इस दौरान होनेवाले हार्मोनल परिवर्त्तनों के बारे में परिवार के बड़ों को समझाना चाहिए। पारम्परिक रूप से मासिक धर्म के समय स्त्री को अपवित्र माना जाता है। आज के दिन भी इस तरह

के दकियानूसी विचार खत्म नहीं हुए हैं। यही कारण है कि मासिक धर्म से सम्बन्धित यदि कोई तकलीफ या समस्या आती है तो चिकित्सकों के पास जाने में महिलाओं को संकोच होता है। प्राय: गाँवों में महिलायें इस समय पुराने गंदे और संक्रमित कपड़े पहनती और इस्तेमाल करती हैं। पुराने गंदे कपड़ों का प्रयोग भयंकर संक्रमण का कारण बन जाता है और तो और आज भी मासिक धर्म के दौरान महिलाओं को सबसे अलग अंधेरी कोठरियों में रहना पड़ता है। यह सब शिक्षा और सफाई से अनभिज्ञता एवं अन्धविश्वास के चलते होता है। यही कारण है कि आज 70 फिसदी से ज्यादा औरतों के गर्भ धारण से सम्बन्धित संक्रमण उचित स्वच्छता ना रखना ही है।

आज बसा के अधिक इस्तेमाल के चलते लड़कियाँ 13-14 के बजाय 11-12 वर्ष में ही वयस्क होती जा रही हैं। हाई कैलोरी डाइट जैसे खाने में तली चीजें, बटर, चीज आदि इस्तेमाल करने से भी किशोरियों में जल्दी मासिक धर्म शुरू हो जाता है। शारीरिक और मानसिक रूप से भी कम उम्र में ही लड़कियाँ वयस्क हो रही हैं। समाज में आए बदलाव एवं खुलापन ने लड़कियों को रूढ़िवादी जकड़न से मुक्त किया है। उनकी जिज्ञासाएँ बढ़ी हैं। अभी तक जो कुछ उनके लिए गोपनीय रहा उनपर अब आपसी बहसें हो रही हैं। वे अब इन्टरनेट, टी.बी. और विभिन्न मैगजीनों के सेक्स सम्बन्धी स्तंभों को रुचि लेकर पढ़ रही हैं।

आज घर की बड़ी बूढ़ी औरतों एवं माँ को चाहिए कि वे अपनी किशोरियों को गोपन-ज्ञान दें, स्वच्छता की शिक्षा दें। छोटी-छोटी बातों की जानकारी के अभाव में महिलायें या बालिकायें गंभीर बीमारी की शिकार हो जाती हैं। बाद में इनका इलाज भी संभव नहीं हो पाता है। कभी-कभी तो बीमारी का पता भी नहीं चल पाता है। परिवार, समाज, सरकार एवं स्वयंसेवी संस्थाओं का दायित्व बनता है



कि वे ज्यादा से ज्यादा जानकारी महिलाओं को मुहैया करायें और सम्बन्धित भ्रांतियाँ दूर करने की कोशिश करें। भारत सरकार की स्वास्थ्य एवं कल्याण मंत्रालय ने ग्रामीण किशोरियों में मासिक धर्म से संबंधित साफ-सफाई के प्रति जागरूकता फैलाने के लिए गाँवों की बालिकाओं को रियायती मूल्य पर सैनेटरी नैपकीन दिये जाने की योजना बनाई है। सैनेटरी नैपकीन का एक पैकेट जिसमें छह नैपकीन होंगे, का मूल्य मात्र छह रुपये होंगे। राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन के तहत ऐसा किया जा रहा है।

महिलाओं में स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्यायें जैसे श्वांस और पाचन सम्बन्धी समस्यायें, कुपोषण तथा तनाव, डिप्रैशन, गठिया, जोड़ों का सूजन आदि बीमारी पाई जाती है।

मातृ-मृत्यु दर इतनी बढ़ गयी है कि हर वर्ष 67 हजार महिलायें बच्चों को जन्म देते समय मर जाती हैं और 9 लाख बच्चों की मृत्यु जन्म के पहले महीने में ही हो जाती है। यह प्रसन्नता का विषय है कि मातृ-मृत्यु दर को रोकने के लिए स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय 'राष्ट्रीय जननी शिशु सुरक्षा' कार्यक्रम लागू कर रहा है। श्रीमती सोनिया गांधी ने इस कार्यक्रम की शुरुआत करते हुए कहा कि इस योजना के तहत सभी गर्भवती महिलाओं को सरकारी स्वास्थ्य संस्थानों में नि:शुल्क प्रसूति का अधिकार दिया जाएगा। सभी दवाएं एवं चिकित्सकीय परीक्षण नि:शुल्क होंगे। यदि रोगी को किसी बड़े अस्पताल में रेफर किया जाता है तो सरकार उसका खर्च भी वहन करेगी। अस्वस्थ नवजात बच्चों का जन्म से लेकर 30 दिनों तक उपचार किया जायेगा। महिलाओं को घर से अस्पताल लाने और घर वापस ले जाने के लिए नि:शुल्क परिवहन प्रदान करने का प्रावधान है। सामाजिक स्वास्थ्य कार्यकर्त्ता 'आशायें' इस योजना को लागू करने में मदद करेंगी। वास्तव में यह एक सुखद समाचार है।

सभी राज्यों को इस योजना को लागू करना है।

महिलाओं की स्वास्थ्य समस्या का मुख्य कारण है लड़कियों की उपेक्षा, अपर्याप्त पोषण, कम उम्र में विवाह, महिलाओं के प्रति किये जानेवाले हिंसात्मक व्यवहार, स्वास्थ्य संबंधी अज्ञानता, स्वास्थ्य सुविधाओं की कमी आदि। महिलाओं के शैक्षिक स्तर को बढ़ाकर, स्वास्थ्य सुविधाओं की उपलब्धता में वृद्धि कर, इन कारणों को दूर किया जा सकता है। साथ ही वहाँ तक महिलाओं की पहुँच को भी सुनिश्चित कर, समय-समय पर महिलाओं के स्वास्थ्य का परीक्षण कर, उनकी स्वास्थ्य समस्या का समाधान किया जा सकता है। मासिक धर्म से निवृत्ति के बाद महिलाओं में हृदय रोगों के मामले तेजी से बढ़ते हैं। कभी-कभी हृदय रोगों की मौजूदगी पर भी महिलाओं में इस रोग से संबंधित गंभीर लक्षण प्रकट नहीं भी हो सकते हैं। छाती में हल्की परेशानी, सांस फूलना, उल्टी आना, जी मिचलाना, पसीना आना, सुस्त रहना आदि लक्षणों को प्रायः चिकित्सक एसीडिटी, चिन्ता, बेचैनी और रजोनिवृत्ति से संबंधित लक्षण मान लेते हैं लेकिन इस पर गंभीरता से ध्यान देना चाहिए और मेडिकल सहायता लेनी चाहिए। हर वर्ष गर्भाशय कैंसर से हजारों महिलाओं की मौत होती है। इससे बचाव के लिए टीका उपलब्ध है जो 13 से 14 साल की लड़कियों को दी जा सकती है। वैक्सिन से कैंसर से बचा जा सकता है। महिलाओं को इसके प्रति जागरूक करने की जरूरत है, जिससे इसका लक्षण दिखते ही इलाज किया जा सके।

महिलाओं का स्वस्थ रहना अति आवश्यक है। सम्पूर्ण परिवार को स्वस्थ बनाये रखने के लिए इनका स्वस्थ रहना अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। महिलायें ही सम्पूर्ण परिवार की सुख-समृद्धि एवं स्वास्थ्य की धुरी हैं, बुनियाद हैं। सृष्टि रचनेवाली हैं। मनुष्य को जन्म देने वाली, मानव को मानव बनाने वाली एवं उन्हें राह दिखानेवाली हैं।

इक्कीसवीं सदी के पदार्पण के बावजूद समाज की मनोवृत्ति में बहुत ज्यादा फर्क नहीं आया है। आज भी परम्परावादी परिवार पुत्रों को वंश चलाने वाला मानते हैं। जब तक हमारी महिलायें स्वास्थ्य के क्षेत्र में कामयाबी हासिल नहीं करेंगी, उनके रहन-सहन का स्तर स्वच्छ एवं स्वस्थ माहौल उन्हें नहीं मिलेगा, पुरानी गलत परम्पराओं, रूढ़ियों एवं अंधविश्वासों को जड़ से उखाड़ कर फेंक नहीं दिया जायेगा, उन्हें परिवार में पूर्ण आजादी एवं पूर्ण अधिकार तथा सम्मान नहीं मिलेगा तब तक महिला-सशक्तीकरण अधूरा ही रहेगा।

❐❐❐

# महिलायें और मानवाधिकार

**''अधिकार खोकर बैठ रहना यह महा दुष्कर्म है/न्यायार्थ अपने बन्धु को भी दण्ड देना धर्म है/इस ध्येय पर ही कौरवों और पाण्डवों का रण हुआ जो भव्य भारतवर्ष के कल्पान्त का कारण हुआ।''**

इसमें कोई शक नहीं कि किसी के भी अधिकार का हनन उचित नहीं और हनन होता है तो उत्तेजना होती है। चाहे उसमें तेरह वर्ष ही क्यों न लगे, बनवास और अज्ञातवास भी क्यों न काटना पड़े और उत्तेजना होती है तो क्रोध का विस्फोट होता है और यह विस्फोट भयानक युद्ध के रूप में परिणति पाता है जो कविवर मैथिलीशरण गुप्त विरचित उपर्युक्त पंक्तियाँ सिद्ध करती हैं। प्रकृति की तरफ से सबको, नारी अथवा नर को समानाधिकार प्राप्त है। वह किसी में भी विभेद नहीं करती। वह तो हम अपनी सुविधा के लिए बहुत सारी चीजों को विभाजित कर देते हैं जिसमें हमारी स्वार्थपरता ही अधिक होती है। प्रकृति ने सबको पैदा किया है इसीलिए प्रकृति प्रदत्त नियम और पदार्थ सबको समान रूप से उपलब्ध है जिनका पालन और उपभोग अगर सम्यक ढंग से नहीं होता है तो अशान्ति होती है। नर और नारी जिसका भी जो भाग है उसे मिलना ही चाहिए। दिनकर ने 'कुरुक्षेत्र' में ठीक ही कहा है–**''शान्ति नहीं होगी, जबतक/सुख भाग न नर का सम हो नहीं किसी को बहुत अधिक हो, नहीं किसी को कम हो।''**

हम देख रहे हैं कि उपर्युक्त दोनों ही राष्ट्रकवियों ने समान अधिकार की बात कही है। इस समान अधिकार की वकालत इसलिए नहीं की जा रही है कि हमें अपनी तरफ से या अपनी धन सम्पत्ति में से किसी को कुछ देना है–प्रकृति ने स्वयं ही ऐसे नियम बना दिये हैं कि अगर उन नियमों का हम सम्यक् रूप से पालन करें तो असमानता की बात उठेगी ही नहीं। वह तो हम अपनी स्वार्थपरता के लिए प्रकृति-प्रदत्त कुछ अधिकारों को अपनी तरफ खींच लेते हैं, कुछ पर बंदिशें लगा देते हैं और कुछ मात्र कुछ लोगों को उनके भाग्य से स्वत: मिल जाता है। देना प्रकृति का धर्म है। गलती तो हम तब करते हैं जब प्रकृति जो हमें देती है, उसके बदले हम उसे कुछ नहीं देते। नारी का स्वभाव भी प्रकृति की तरह ही देने वाला है, वह देना मात्र जानती है। समाज को भी उसके द्वारा इस देने को लौटाने की बात जरूर सोचनी चाहिए। लेकिन स्थिति बिल्कुल इसके विपरीत है। जो औरत घर के लोगों के लिए घर में चौबीसों घण्टे सबका ध्यान रखती, सबका मुँह देखती और सबके लिए दिन रात खटती रहती है, उसके प्रति घर के पुरुष बिल्कुल लापरवाह रहते हैं। यह तो उस नारी की महत्ता है जो लेन-देन की बात भूलकर सबकी सेवा में सतत् संलग्न रहती है।

संस्कृत में सूक्ति है–**''यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता''** अर्थात् जहाँ स्त्रियों की पूजा होती है, वहाँ देवताओं का अधिवास होता है। एक महापुरुष का कथन भी है–''असल देवता तो

नारी है क्योंकि इस शब्द में ही देवता के तीनो गुण–देना, वरण करना और तारना विद्यमान है।'' जिस प्रकार देवता केवल देते ही रहते हैं और हमें जो देते हैं उसे सहर्ष हम वरण करते रहते हैं, हमारी जीवन नैया को पार लगाकर हमें तार देते हैं वैसे ही नारी भी सदैव देती ही रहती है। बाल्यावस्था से वृद्धावस्था तक परिवार और समाज को वह बिना माँगे देती रहती है। उसकी यदि उपेक्षा करें, उसे गाली दें, उसका उत्पीड़न करें, तो भी वह कोई विरोध नहीं करती है। सदैव जिस रूप में उसे जो भी देते हैं उसको ग्रहण करती है। इसी जन्म में ही सन्तति देकर धर्मशास्त्र के अनुसार पुरुष को, परिवार को तारती भी है–**''तारणीं दुर्ग संसार सागरस्य कुलोदभवाम्''** ऐसी नारी जो देवता स्वरूप है, वह हमारे देश में प्रताड़ित होती ही रही है। यह सत्य है कि बीसवीं सदी के छठे–सातवें दशक से हमने पाश्चात्य जगत् का अनुवर्त्ती होकर, नारी–मुक्ति आन्दोलन और स्त्री–विमर्श की बात शुरू कर दी है।

ऐसा जरूर है कि मुसलमान–शासन में पर्दा–प्रथा के प्रचलन के कारण नारियों के शील और सम्मान की रक्षा के बहाने धीरे–धीरे उनका उत्पीड़न और शोषण होने लगा। यह शोषण बीसवीं सदी के आरंभ तक अवश्य ही रहा, जब तक महात्मा गांधी ने अपने 1921 के असहयोग आन्दोलन में नारियों को नहीं उतारा और 1942 के 'भारत छोड़ो आन्दोलन' में उनका आह्वान नहीं किया। जहाँ तक प्राचीन युग की बात है यानी वैदिक, आरण्यक अथवा औपनिषदिक काल की बात है, नारी को पुरुषों के समतुल्य अधिकार प्राप्त थे। यहाँ तक कि वे पुरुषों के साथ भी भरी सभा में शास्त्रार्थ करती थीं। याज्ञवल्क्य और गार्गी के शास्त्रार्थ की बात प्रसिद्ध है जो महाराजा जनक के दरबार में हुआ था। मध्य युग से पूर्व दसवीं शताब्दी के आरंभ में शंकराचार्य और मंडन मिश्र की पत्नी भारती का शास्त्रार्थ



कौन नहीं जानता ? केवल शास्त्रार्थ ही नहीं, अगर सेवा और समर्पण की बात कहें, पति को विद्वान बनाने में, उन्हें प्रसिद्ध करने में तो 'भामती' का नाम भी भुलाया नहीं जा सकता। यह प्रसंग मिथिलांचल का ही है, कि वाचस्पति मिश्र जो दर्शन और न्यायशास्त्र के पंडित थे, विवाहोत्तर शंकराचार्य के सूत्रों का भाष्य लिखने लगे तो यह भूल ही गये कि उनका विवाह भी हुआ है। वे जब तक लिखने की साधना में दत्तचित्त रहे तब तक उनकी पत्नी 'भामती' उनके कक्ष में आकर अँधेरे के समय दीप जलाकर प्रकाश कर देती थीं और चुपचाप चली जाती थीं। एक दिन जब वाचस्पति मिश्र अपनी पुस्तक के उपसंहार में पहुँच चुके थे और उनकी लेखनी विश्राम कर रही थी और अंधेरा होने–होने को था, तो उन्होंने देखा कि कोई महिला आकर धीरे से दीपक रख रही है और उसकी बत्ती उकसा रही है। मिश्र जी ने उनसे उनका परिचय पूछा और जब उन्होंने कहा कि–''मैं आपकी पत्नी हूँ'' तो उन्होंने अत्यंत खेद प्रकट किया और कहा कि–''हमलोगों की युवावस्था तो सरस्वती को ही अर्पित हो गई। मैं आपको कुछ नहीं दे सका। यहाँ तक कि कोई सन्तान भी नहीं, तो लीजिए आज मैं अपनी इस पुस्तक का नामकरण ही 'भामती' करता हूँ''–और इस प्रकार उन्होंने अपनी पत्नी 'भामती' की सेवा शुश्रूषा को अमर कर दिया।

तो जहाँ तक भारत में महिलाओं के लिए अधिकार की बात है तो उसकी आवश्यकता प्रायः मध्य युग के पूर्व नहीं थी। स्त्रियों को उनका दाय मिल रहा था जो योग्य थीं। चाहे जिस प्रकार भी हो, उन्हें समाज में सम्मान और उनका अधिकार मिलता ही था।

सामान्य रूप से विश्व के सभी मानवों को समान अधिकार दिलाने के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ के तत्त्वावधान में एक मानवाधिकार आयोग की स्थापना की गई जिसकी अध्यक्षा श्रीमती रूजवेल्ट बनीं।

10 दिसम्बर 1948 को इसे अंगीकृत किया गया। इस घोषणा में नागरिक अधिकारों के साथ-साथ सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक अधिकार भी सम्मिलित किये गये। यह मानवाधिकार सार्वजनिक है एवं सबके लिए मार्गदर्शक और प्रेरक है।

भारत में राष्ट्रीय मानवाधिकार की स्थापना 1993 में हुई। 18 दिसम्बर 1993 में लोकसभा में मानवाधिकार संरक्षण विधेयक पारित हुआ और 8 जनवरी 1994 को इसे राष्ट्रपति की अनुमति मिली। फिर यह विधेयक अधिनियम बन गया। इसी को मानवाधिकार-संरक्षण अधिनियम कहा जाता है। इस आयोग का काम मानव अधिकारों का संरक्षण करना है। अधिकार के लिए कानून तो बने हैं लेकिन कानून के बावजूद बहुत सारी जगहों पर ऐसी परिस्थितियाँ हैं, ऐसी कठिनाइयाँ हैं जहाँ मानव-मानव में असमानता है। स्वतंत्रता के पूर्व तक और स्वतंत्रता के बाद भी दो-तीन दशकों तक यह स्थिति रही। धीरे-धीरे स्वतंत्रता की हवा लगने से या फिर कहें, समझदार सरकार बनने से जनता में क्रमशः अपने अधिकारों के प्रति सजगता होने लगी और आयोग के गठन से भी मानव अधिकारों का संरक्षण मात्र ही नहीं होने लगा बल्कि मानव अधिकार के प्रति जन-साधारण में चेतना भी जागृत होने लगी और इस क्षेत्र की संस्थाओं को प्रोत्साहन भी मिलने लगा। सच्ची बात तो यह है कि मानवाधिकार मानव के जन्मजात अधिकार हैं जो उसके गरिमामय अस्तित्व एवं जीवन यापन के लिए अनिवार्य होते हैं या यों भी कह सकते हैं कि मानवाधिकार प्रत्येक मानव को गरिमा के साथ, स्वतंत्रता पूर्वक, सम्मान पूर्वक, बिना किसी भेद-भाव के इस धरती पर जीने और सुविधानुसार व्यवसाय कर जीवन यापन करने के अधिकार को कहते हैं।

इन मानवाधिकारों में आहार, आवास, स्वास्थ्य, सुरक्षा, धार्मिक-सांस्कृतिक स्वतंत्रता, राजनैतिक अधिकार इत्यादि तो स्त्रियों



को पहले से ही किसी-न-किसी रूप में प्राप्त हैं। स्वतंत्रता के बाद सभी वयस्क स्त्रियों को मताधिकार मिला ही। आहार, आवास, स्वास्थ्य तथा सुरक्षा तो स्वाभाविक ही था। शिक्षा और स्त्री-पुरुष में समानता वाले अधिकार पर अमल नहीं होता था। नारी अधिकारों की रक्षा नहीं हो पाती थी। विशेषकर मध्यवर्ग में तो शिक्षा की भी कमोवेश व्यवस्था रही किन्तु रूढ़ियों के कारण नारी अधिकार : पीठ के पीछे हो गये।

आज की तारीख में यदि सच्ची बात कहें तो कई संगठनों–सरकारी और गैरसरकारी के कारण मानवाधिकार और नारी अधिकार दोनों पर कमोवेश, अमल हो रहे हैं। यह जरूर है कि अभी भी हमारे देश में ही नहीं पूरे विश्व में, सारी प्रगति और उन्नति के बावजूद मानवाधिकार का हनन हो रहा है, उल्लंघन भी हो रहा है। यदि उल्लंघन के इस क्रम को रोका नहीं गया तो एक ऐसी आँधी आयेगी जो मानवता के समस्त फूलों और फलों को झाड़-झूर कर हमारी सभ्यता का ही बंटाधार कर देगी। जहाँ तक नारियों की बात है, तो उनका भी अपहरण किया जाना, बेचा जाना, जला दिया जाना, बाल विवाह, भ्रूण हत्या, बलात्कार, दहेज-प्रथा के वीभत्स रूप के कारण दहेज-प्रताड़ना, दहेज हत्या, घरेलू हिंसा आदि अनेक अमानवीय कार्य समाज में आज भी हो रहे हैं। आज भी सर्वाधिक शोषण महिलाओं का ही हो रहा है। महिलाओं के विरुद्ध अपराध को रोकने के लिए सरकार द्वारा तरह-तरह के कानून बनाये जा रहे हैं अवश्य किन्तु स्थिति अभी भी वैसी ही है जिसके लिए हमें यह कहावत उद्धृत करनी पड़ रही है–**''पानी ज्यों-का-त्यों, कुनबा डूबा क्यों ?''**, नये अध्ययन एवं सर्वेक्षण के अनुसार हमारे समाज में करीब पैसठ से पचहत्तर प्रतिशत महिलायें किसी न किसी रूप में घरेलू हिंसा का शिकार हैं। बलात्कार की रोकथाम के लिए सरकार द्वारा

नये-नये कानून बनाये जा रहे हैं, फिर भी अखबारों के पन्ने बलात्कार की घटनाओं से भरे रहते हैं। यदि समाज में स्त्री और पुरुष के बीच आज भी शोषणपरक भावना जारी है, पुरुष को स्त्री के उत्पीड़न में यदि आज भी खूली छूट है और वह जब जहाँ चाहे वहाँ स्त्री को अपनी पाशविकता का शिकार बना सकता है तो कानून की बात करना, स्त्रियों को कानूनी रूप से बराबरी का दर्जा दिये जाने की बात करना व्यर्थ है। सच तो यह है कि व्यावहारिक रूप से उन्हें आज भी बराबरी हासिल नहीं है।

स्त्रियों को बाजार ने भी अपना निशाना बनाया है। उपभोक्तावाद की संस्कृति ने बाजार को भी हमारे घरों के भीतर प्रवेश करा दिया है। आज बाजार हमारे लिये सारे व्यवहारों का निर्देशक, नियंत्रक और मार्गदर्शक बन गया है। अब बाजार ही यह बताता है कि किस टेलर से और किस ब्रान्ड का तथा किस डिजाइन का कपड़ा सिलाने और पहनने से देखने वाला हर पुरुष आकर्षित होगा। किस तरह के कपड़े, कॉस्मेटिक्स और डिट्र्जेन्ट का प्रयोग करने से हमारी खूबसूरती बढ़ेगी और लोग हमारी तारीफ करेंगे। अगर सच कहा जाये तो इस उपभोक्तावाद ने सबसे अधिक आक्रमण स्त्री के स्वाभाविक सौन्दर्य, उसके स्वाभाविक प्रेम और परिवार-पोषण की तत्परता पर किया है, जिसका परिणाम यह हुआ है कि हमारी संस्कृति के अनमोल शब्द अपना परिचय और अर्थ खोते जा रहे हैं। बीसवीं शताब्दी तक प्राय: एक शब्द **'असूर्यंपश्या'** अपनी प्रभा खो देने के बावजूद अस्तित्व में था किन्तु अब वैसा नहीं है। इसी तरह नारी का सर्वाधिक गौरवशाली आभूषण 'लज्जा' भी विलोपित है। दु:खद है कि जिसका यह आभूषण है उन्हीं के द्वारा निर्ममता पूर्वक इस पर प्रहार किया जा रहा है। इसे हम कह सकते हैं कि-**'घर में आग लग गई, घर के चिराग से।'**



स्त्रियाँ इसकी शिकायत तो करती हैं कि पुरुष उनको तंग करते हैं लेकिन इसके साथ यह भी बात है कि आज की स्त्रियाँ प्रदर्शन प्रिय भी अधिक हो गई हैं। सवाल है कि जब हम हाथ में दीपक लेकर बाजार में घूमेंगे तो फतिंगे तो मंडरायेंगे ही। सामाजिक अथवा पारिवारिक शोषण एवं बुराइयों को दूर करना बहुत कुछ हमारे हाथ में है, स्त्रियों के हाथ में हैं। कुछ प्रान्तों से, कुछ प्रदेशों से सती प्रथा अवश्य समाप्त हो गई है, किन्तु जहाँ इस प्रथा का आधिक्य था वहाँ आज भी बात वही **'ढाक के तीन पात'** वाली ही है। आज भी अन्याय, शोषण और हिंसा की शिकार स्त्रियों के लिए घर-परिवार की दहलीज से अदालत के दरवाजे के बीच बहुत बड़ा फासला है जिसे पार करना किसी भी स्त्री के लिए अत्यन्त कठिन है और इसमें भी उसके शोषण की बहुत सारी सम्भावनाएँ हैं। घर के बाहर और अदालत के अंधेरे में खड़ी आधी दुनिया के साथ पता नहीं न्याय का फैसला कबतक सुरक्षित रहेगा या रखा जायेगा। स्वामी विवेकानंद ने कहा था-''स्त्रियों की अवस्था में सुधार लाये बिना विश्व कल्याण असंभव है।'' इसी बात को अनेक महापुरुषों, बुद्धिजीवियों और चिन्तकों ने अपने-अपने ढंग से कहा है, किन्तु सबका सार यही है कि स्त्री को विकास के अवसर मिलने चाहिए और उसकी कठिनाइयाँ दूर होनी चाहिए। नवयुग की स्त्री की मूल मांग सत्ता की नहीं, स्वतंत्र चेतना की है। जहाँ मनुष्य उत्तरदायी होगा, उसकी चेतना बलवती होगी, वहाँ सत्ता को तो उसके ही इर्द-गिर्द मंडराना पड़ेगा। महिलाओं को अपना वाह्य सौन्दर्य, शारीरिक सौन्दर्य विकसित करने की जगह आत्मिक सौन्दर्य का विकास करना होगा।

वर्तमान समय में बालिका भ्रूण-हत्या सबसे ज्यादा गंभीर मानवाधिकार हनन का मुद्दा है क्योंकि इस प्रक्रिया के द्वारा मानव के उस प्राकृतिक अधिकार को ही छीन लिया जाता है, जिसके बल पर

उसे इस दुनिया में आने का अधिकार है। मानव अधिकार की बात इस संदर्भ में धरी की धरी रह जाती है। यह एक ऐसा जघन्य अपराध है जिसमें सज्ञान माता-पिता से लेकर परिवार और तथाकथित डाक्टर भी शामिल रहते हैं। महात्मा गांधी जैसे अकोपी और परम सहिष्णु व्यक्ति ने भी अपनी पुस्तक 'हिन्दू स्वराज्य' में डाक्टरों, वकीलों, और वेश्याओं की इसीलिए भर्त्सना की है कि वे मात्र अपना स्वार्थ देखते हैं। समाज और राष्ट्र उनके मस्तिष्क से, धन देखते ही छूमंतर हो जाता है।

आज भी यह बात सही है कि चाहे वे उच्चवर्ग अथवा मध्यम वर्ग की ही क्यों न हो 75 फीसदी महिलायें अपने साथ हुए अपराध को पुलिस में रिपोर्ट नहीं करतीं। निम्नवर्ग की स्त्रियाँ तो वैसे भी अक्षम होती हैं और उन्हें डरा-धमकाकर चुप करा दिया जाता है। आँकड़े बताते हैं कि हर मिनट पर एक महिला के साथ दुर्व्यवहार, हर तीन मिनट पर एक महिला के साथ कोई अपराध, हर डेढ़-दो घण्टे पर एक दहेज-हत्या और हर आधे घंटे पर एक मर्डर, हर एक घंटे पर यौन-उत्पीड़न, हर आधे घंटे पर एक बलात्कार और हर दस मिनट पर पति या अन्य रिश्तेदारों द्वारा घरेलू हिंसा स्त्रियों के साथ हुआ करते हैं। ये आँकड़े जहाँ हमें डराते और चौंकाते हैं, वहीं हमारे समाज के चिन्तन और कानून की पोल भी खोलते हैं। हमें सतर्कता स्वयं बरतनी होगी। यह सब हमारे समाज में महिलाओं के प्रति बढ़ती हुई अपराधिक प्रवृत्ति की पराकाष्ठा है। आज जेल में, अनाथालय में, कार्यालय में, सब जगह अधिकारियों एवं कर्मचारियों के द्वारा महिलायें शोषित हो रही हैं। प्रश्न यह है कि इन सारी बातों के लिए दोषी कौन है ? अपराधी के हौसले क्यों बढ़ते हैं ? अपराध के प्रति जब तक लोग स्वयं निर्भय और नि:शंक होकर उसका जवाब नहीं देते, ऐसे व्यक्तियों की निंदा नहीं करते, सार्वजनिक रूप से ऐसे लोगों की



भर्त्सना नहीं की जाती, तब तक ऐसे अपराध होते रहेंगे। लेकिन होता है ठीक इसके उल्टा, जो नेता अत्यन्त ही घूसखोर हैं, भ्रष्टाचारी हैं, जनता के पैसे खाकर अपनी तोंद पर हाथ फेरते हैं, उन्हें हम स्वयं बुलाकर, आमंत्रित कर, अभिनंदन-पत्र समर्पित करते हैं। जिसमें शत-प्रतिशत झूठी बातें हम लिखे रहते हैं। वे जो-जो भी करते हैं ठीक उसके विपरीत हम लिखते हैं। परम भ्रष्टाचारी को हम सदाचारी बना देते हैं। उन्हें फूल मालाओं से लाद देते हैं, गड़गड़ाकर तालियाँ बजाते हैं। जो अधिकारी, जो बुद्धिजीवी, जो व्यापारी, जो भी सफेदपोश भीतर से जितने ही अनैतिक हैं, उतना ही उनकी नैतिकता का नगाड़ा हम पीटते हैं। फल क्या होता है ? वे समझते हैं कि जब जनता की इच्छा के विरुद्ध कार्य करने पर उन्हें इतना सम्मान और आदर मिल रहा है तो उसके अनुकूल कार्य क्यों किये जायें ? अनुकूल करने में घाटा भी है और प्रतिकूल करने में तिजोरी भरती चली जाती है। हमे निश्चित रूप से निर्भीक होकर ऐसे लोगों का, ऐसे नेताओं का, ऐसे विद्वानों का, ऐसे बुद्धिजीवियों और पदाधिकारियों का, शिक्षाविदों का बहिष्कार करना चाहिए।

महिलाओं के प्रति सामाजिक उपेक्षा और अपराध रोकने के लिए चाहे हम कितने भी महिला-कोषांगों का गठन कर लें, कितने भी संगठन बना लें, उन्हें जब तक संसाधन और अधिकार नहीं देते तब तक हम महिलाओं को न तो सुरक्षित रख सकते हैं और नहीं उन्हें आश्वस्त कर सकते हैं। हमारा रूढ़िवादी समाज स्त्री को डराना चाहता है। डराकर, दबाकर उनपर अधिकार जमाना चाहता है। इस दबाव से उबरने के लिए जो सबसे अहम कार्य है—वह है महिलाओं को सुशिक्षित करना। हमारे ही देश में महिलाओं का एक ऐसा वर्ग हर समय और हर काल में विद्यमान रहा है, जिसने अपनी स्वतंत्रता का लाभ लेते हुए एक-से-एक महान् कार्य किया है। मध्य वर्ग की

भी बहुत सारी महिलायें अपने हुनर से हर क्षेत्र में आगे बढ़ रही हैं। शासन-प्रशासन, राजनीति, शिक्षा, लेखन, चिकित्सा, उद्योग और नभारोहरण से लेकर पर्वतारोहण तक में ये अपना नाम दर्ज करा रही हैं।

सबसे बड़ी समस्या यह है कि नारी के अधिकार और उसके मुक्ति-संग्राम का पुरोधा कौन बनेगा ? इस जेहाद का नारा कौन बुलंद करेगा ? इस स्वतंत्रता का शंखनाद कौन करेगा ? ''Self help is the best help'' इस कहावत के अनुसार सबसे पहले नारी को ही आगे बढ़ना होगा। नारियाँ ही अपनी लड़ाई आप लड़ेंगी। सेवा भावी, शिक्षा भावी, प्रगति भावी महिलायें एक जुट और जागृत होकर गाँव-गाँव, मुहल्ले-मुहल्ले, दरवाजे-दरवाजे जाकर महिलाओं में नारी चेतना का संचार कर सकती हैं और नारी के अधिकारों से उन्हें परिचित करा सकती हैं। उन्हें स्वच्छता, स्वास्थ्य और स्वावलम्बन की सीख दे सकती हैं। रचनात्मक प्रवृत्ति का विकास करा सकती हैं। नारी जागरण के लिए नारी को ही हथियार बनना होगा। ज्यों-ज्यों नारी संगठन मजबूत होंगे, त्यों-त्यों कुरीतियाँ और उनका शोषण आप से आप दूर होने लगेंगे क्योंकि सूर्योदय होने के साथ ही यह तय बात है कि अन्धकार के पर्दे फटने लगते हैं। नारियाँ खरी बनें, खरा काम करें, खरी बात कहें इससे उनकी सारी आपत्तियाँ और बाधायें दूर हो जायेंगी। नारी ब्रह्म विद्या है, श्रद्धा है, शक्ति है, पवित्रता है, विज्ञान और कला, चरित्र और चिन्तन सब कुछ है।

नारी वह सर्वश्रेष्ठ तथ्य है जो इस संसार में दृष्टिगोचर होता है। समाज अगर अपनी श्रद्धासिक्त भावना से नारी रूपी तुलसी के इस बिरवे को सींचेगा तो इसकी पत्तियाँ और फूल सम्पूर्ण वातावरण को मह-मह करते हुए, सबको ऑक्सीजन देते हुए, स्वास्थ्य का सबल वातावरण तो बनायेंगे ही आन्तरिक रूप से भी दुर्भावना, असूया



और ईर्ष्या को धोते हुए समस्त संसार को पवित्र करेंगे और इस प्रकार हमारी मानव-जाति का प्रत्येक क्षेत्र स्वर्गीय सुख से ओत-प्रोत होगा। जिन्दगी दौड़ने लगेगी और संसार सुखमय हो जायेगा। नारी तो स्वयं ही हमें अधिकार प्रदान करने वाली है। पुरुष को सशक्त बनाने वाली है, इसलिए उसे अधिकार देकर, उसका दाय देकर हम उसे कृतार्थ नहीं करेंगे वरन् स्वयं कृतार्थ होंगे।

❐❐❐

# महिला सशक्तीकरण : भ्रम या संभ्रम

आज के दौर में यह शब्द बड़ा ही लोकप्रिय और नारियों के लिए तो कर्णप्रिय भी हो गया है। इसीलिए मैंने इसका शीर्षक रखने से पूर्व बहुत कुछ सोचा है। भ्रम किसी वस्तु में किसी अन्य वस्तु के निश्चयात्मक ज्ञान को कहते हैं और संभ्रम कहते हैं संकोच को, सकरात्मक भय को। ऐसी स्थिति में महिला सशक्तीकरण को अगर भ्रम मानें तो इसका अर्थ यह हुआ कि शीर्षक अथवा इस नारे के द्वारा नारी के निर्माण अथवा विकास से अधिक उसे ठगने की चेष्टा की जाती है। वस्तुतः यह नारा उछालने वाला पुरुष वर्ग, लेखक, साहित्यिक वर्ग या जो भी बुद्धिजीवी हैं, वे इसके द्वारा नारी मात्र को प्रसन्न करना और उसे बहलाना चाहते हैं। रस्सी में साँप या साँप में रस्सी का निश्चयात्मक ज्ञान महिलाओं को कराया जा रहा है। शब्द महिला 'सशक्तीकरण' है लेकिन या तो उनका शोषण किया जा रहा है, या खुशामद। गिने-चुने लोग ही ऐसे हैं, जो इस शब्द से संभ्रम कर रहे हैं यानी शालीनता या संकोचपूर्वक ही सही, नारी के सम्बन्ध में सकारात्मक सोच रहे हैं। पाश्चात्य जगत के चिन्तन से यह चीज हमारे यहाँ आयी। 1930 के बाद फ्रान्सीसी चिंतक महिला 'सीमेनद बोउआर' ने 'द सेकेण्ड सेक्स' पुस्तक लिखकर भारतीय संदर्भों में इसकी शुरुआत की। इस पुस्तक के ही अनुवाद-स्वरूप महिलाओं के लिए 'आधी दुनिया' शब्द प्रचलित हुआ। यों अगर बारीकी से देखें, तो हमारे यहाँ उस समय भी, जब प्रत्यक्ष रूप से नारी को स्वतंत्र नहीं माना जाता था, उन्हें पर्दे के भीतर रखा जाता था, उनकी पूर्ण शिक्षा-दीक्षा की व्यवस्था नहीं की जाती थी, तब भी महिलायें अपने क्षेत्र में अशक्त नहीं थीं। यह अलग बात है कि उन्हें यह स्वाधीनता नहीं थी कि वे अपने मन से अपने कार्य अथवा अपने क्षेत्र का चयन करें। सबसे अहम बात यह है कि इस स्थिति में भी भारतीय महिलायें, कभी असन्तुष्ट नहीं रहीं।

इक्कीसवीं सदी की नारी-क्रांति या नारी-जागरण जो भी कहें, में महिलायें स्वतंत्र भी हैं, स्वच्छन्द भी हैं, यह एक सीमा तक सही है, लेकिन उच्छृंखल हैं, यह तो बिल्कुल ही गलत बात है। जागरण या विकास का अर्थ सब कुछ उलट-पुलट देना नहीं है। जो टेढ़ा-मेढ़ा है उसको सीधा करना तो एक सीमा तक ठीक है, लेकिन जो पहले से ही सीधा है, उसको अपने आनंद, मनोरंजन अथवा सुख के लिए टेढ़ा करना तो उच्छृंखलता ही है। पहले नारी के कार्य और अधिकार सीमित थे, तो उनके पास संतोष था। संतोष उनके स्त्री धन का, संतोष परिवार की मलिका होने का, संतोष अपने बच्चों के प्रति साज-सम्भाल और उत्तरदायित्व निर्वाह का, संतोष जीवन के प्रति लगाव और निस्पृहता दोनों का। यह कहा जा सकता है कि निम्नवर्गीय लोगों अथवा अनपढ़ लोगों के यहाँ यह बात नहीं थी। किसी वर्ग में किसी महिला का पति अगर दारू पीकर उसे पीटता है तो यह पति की मूर्खता और उसका जंगलीपन होता है। जो स्त्री अशिक्षित है और जो पुरुष, शराबी है वहाँ आज की नारी सशक्त नहीं है। सशक्तता

समझदारी में है, परिस्थिति में है, वातावरण में है। यह सशक्तता सार्वभौम न होकर कुछ वर्गों तक, कुछ तबकों तक, कुछ अभिजात समाज तक ही सीमित है।

1970 तक नारी-मुक्ति अथवा नारी-सशक्तीकरण का जो आन्दोलन था, वह सही था, मौलिक था और उसका लक्ष्य सम्पूर्ण रूप से नारी को सक्षम और स्वतंत्र करना था। 1970 के बाद धीरे-धीरे नारी-सशक्तीकरण का आन्दोलन अपने सुनिश्चित लक्ष्य से भटक गया। अगर स्पष्ट शब्दों में कहें तो नारी ने भी इस भटकाव में मदद की और पुरुष को तो ऐसा करने में अपना स्वार्थ ही था, जो सदियों से होता आया है। राजनीति में महिलाओं का शोषण होने लगा। कामकाजी महिलाओं के साथ भी यही स्थिति हुई। उनके बॉस या उच्चपदस्थ लोग उनका शोषण करने लगे। सारी बहसें यौन-जीवन और देह तक सिमट गईं। नारी-सशक्तीकरण का मतलब मात्र इतना मान लिया गया कि उन्हें यौन-स्वतंत्रता देने की वकालत की जाय। अगर हम आज के भारतीय साहित्य में देखें तो हमारा स्त्री-विमर्श इन्हीं दो बिन्दुओं पर टिका हुआ है। एक ओर आशापूर्णा देवी, महाश्वेता देवी और शिवानी जैसी लेखिकायें हैं, जो स्त्रियों की बदहाली का चित्रण मात्र नहीं करतीं, वरन् उनके लिए यथेष्ट संघर्ष भी करती हैं। महाश्वेता देवी तो इसमें सबसे आगे हैं, दूसरी ओर यौन-स्वतंत्रता को ही नारी-मुक्ति का पर्याय मानने वाली बोल्ड अथवा बिंदास लेखिकायें भी हैं, जिनमें मैत्रेयी पुष्पा से लेकर अनामिका तक का नाम लिया जा सकता है।

यह सुनिश्चित है कि किसी भी देश की आधी आबादी का प्रतिनिधित्व वहाँ की स्त्रियाँ करती हैं। इसलिए सामाजिक, आर्थिक, साहित्यिक और किसी भी क्षेत्र में उन्हें शामिल नहीं करना समाज को उसकी आधी ताकत से वंचित रखना है। नारी-मुक्ति की पहली



आवाज फ्रान्सीसी क्रांति के दौरान 1792 में उठी। उस समय के विख्यात विचारक 'रुसो' ने यों ही नहीं लिख मारा कि–''Man is born free but every where he is found in chains'' यहाँ रुसों ने 'मैन' का अर्थ मनुष्य किया है न कि 'वीमेन' का अपोजिट। इस मनुष्य शब्द में नारियों की संख्या आधी है। जब स्त्रियों ने नारी-स्वतंत्रता की आवाज न्यूयार्क के घोषणा पत्र में 1848 में उठायी, तब उनकी ध्वनि सबके कानों में पड़ने लगी। इसी आन्दोलन की वजह से स्त्रियों को अमेरिका में 1920 में मतदान का अधिकार मिल गया। यह विवाद बराबर बना रहा कि नारियों को पुरुष की बराबरी का सारा अधिकार दे दिया जाय अथवा उनके लिए अधिक सुविधाएँ मुहैया की जाए। 1946 में संयुक्त राष्ट्र संघ ने एक आयोग का गठन किया। इस आयोग को विश्वभर की महिलाओं को शैक्षणिक, आर्थिक और राजनैतिक अवसर का समान अधिकार दिलाने का उत्तरदायित्व दिया गया। संयुक्त राष्ट्र द्वारा ही 1975 को अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष घोषित किया गया। कहना न होगा कि नारी मुक्ति आन्दोलन की यह बहुत बड़ी विजय थी।

अगर सच्ची बात कहें, तो भारतवर्ष के संदर्भ में यह साफ है कि 200 वर्षों के अंग्रेजी शासन ने हमें अपनी परम्परा से बिल्कुल अलग कर दिया। विक्टोरियन युग के नवीन नैतिक मूल्य हमें अच्छे लगे किन्तु हमारी पुरातन संस्कृति में भी स्त्री की पवित्रता, अपवित्रता तथा यौन-शुचिता के सम्बन्ध में कम बातें नहीं थीं। हमारे पौराणिक, ऐतिहासिक, साहित्यिक तथा स्थापत्य में कहीं भी नारी पराधीन नहीं है। मुगल शासन के दौरान हमारी नारियों को पर्दा-प्रथा का शिकार होना पड़ा। नेपाल के हिन्दू समाज में नारी आज भी और कल भी आजाद रही है। भारतीय आदिवासी समाज में अगर असीम खुलापन है तो किसी-किसी मायने में असीम रुकावटें भी हैं। दरअसल

स्त्री-विमर्श का मूल विषय आत्मनिर्णय का अधिकार होना चाहिए। जैसा कि मैंने पहले भी कहा है, हमारे यहाँ स्त्री-विमर्श निम्न और उच्च वर्ग को लेकर नहीं है, यह अधिकतर मध्य वर्ग की बौद्धिक स्त्री को ही लेकर चलता है। उच्च-वर्ग की स्त्री जल्दी झुक नहीं सकती और निम्न वर्ग की स्त्री में वह तत्व ही नहीं है। मीरा को कहाँ कोई झुका सका, राधा कहाँ मान सकी। सच बात तो यह है कि मध्य वर्ग अपनी खिड़कियाँ खोल ही नहीं सकता। इसी वर्ग की स्त्री सर्वाधिक परतंत्र है। 'सीमेन द बोऊआर' ने ठीक ही कहा है कि–''एक स्त्री पैदा नहीं होती, वह बना दी जाती है।''

यह तथ्य है कि आज महिलायें आत्मविश्वास के साथ समाज की रचना में जुटी हैं। समाज तथा राष्ट्र के प्रति अपनी जिम्मेदारियों का निर्वहन कर रही हैं। अपने बलबूते इस दुनिया में ही नहीं, बल्कि अन्तरिक्ष में भी कदम रख चुकी हैं। आज विश्व भर में महिलाओं को विकास की प्रक्रिया में भागीदार बनने का निमंत्रण दिया जा रहा है। इस संदर्भ में अभी भी मुझे यह कहना सही लगता है कि सरकार जितनी सक्रिय है, उतना परिवार नहीं। भारतीय संविधान ने महिलाओं को जीवन के सभी क्षेत्रों में समानता का दर्जा दिया है, सिर्फ बिहार के ही संदर्भ में देखें, तो राजग की सरकार ने पंचायती राज-व्यवस्था में महिलाओं को 50 प्रतिशत आरक्षण देकर बड़ा ही क्रांतिकारी कदम उठाया है। आज मानव संसाधन विकास मंत्रालय के अन्तर्गत, महिलाओं को सत्ता में भागीदारी के लिए तिहत्तरवें एवं चौहत्तरवें संविधान संशोधन के तहत, पंचायती व स्थानीय निकाय चुनावों में आरक्षण की व्यवस्था की गई है।

जब से महिला सहभागिता व सशक्तीकरण का आन्दोलन चला है, तब से समाज में एक विरोधाभास पैदा हो गया। पुरुष को अपनी पुरानी मानसिकता को बदलकर नई भूमिका में आना पड़ रहा



है, दूसरी ओर महिलायें सशक्तीकरण की आड़ में उपभोक्तावाद की शिकार हो गई हैं और कटु शब्दों में कहें तो वे भी एक 'मशीन' या 'सामान' बनती जा रही हैं। बहुत जगह तो सशक्तीकरण उन्हें स्वाभिमान और ईमान भी नीलाम करने को कह रहा है। आज भी बहुएँ जल ही रहीं हैं, भ्रूण हत्यायें हो ही रही हैं, देह-व्यापार चल ही रहा है, पहले अर्द्ध-नग्न स्त्रियों को देखने के लिए किसी नियत स्थल पर जाना पड़ता था, अब विज्ञापनों द्वारा वे अर्द्धनग्न के रूप में कहीं भी देखी जा सकती है। कविता हत्या-काण्ड आज भी हो रहा है। रूपम पाठक को आज भी यातना मिल रही है। बहुत सारी महिला कर्मचारी जहाँ काम कर रही हैं, वहाँ उनका सेवा समंजन भी नहीं हो रहा हैं। भोजन एवं वस्त्र के लिए बहुत सी नारियों को आज भी दर-दर की ठोकरें खानी पड़ रही हैं। इस तरह महिला सशक्तीकरण, नारी-अधिकार एवं सम्मान-आन्दोलन के आधार के संदर्भ में आज भी दिशा-हीन है। सशक्तीकरण व मुक्ति-आन्दोलन का ढोल पीटने से अधिक आवश्यकता इस देश में समान कानून बनाने, व्यवस्था करने तथा आधी आबादी को आत्मविश्वास के साथ जीवन संघर्ष यात्रा में चलने हेतु प्रेरित करने की है।

यह बात जरूर है कि भारतीय स्त्री के संदर्भ में बीसवीं सदी के आखिरी पाँच दशक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। इसके बावजूद आज भी समाज के धन के अधिकांश भाग पर पुरुषों का कब्जा है। आर्थिक स्वायत्तता-स्वतंत्रता की तरफ स्त्री का पहला कदम है, किन्तु चुनौतियाँ सिर्फ इतनी ही नहीं हैं। प्रभा खेतान का मानना है कि आज नारीवाद परिवार में श्रम के विभाजन और कौटुम्बिक सम्बन्धों में सत्ता के नेटवर्क की ऐतिहासिक खोजबीन में लगा हुआ है। अत्यंत उच्च वर्ग जिसे अंग्रेजी में 'ELIT' कहते हैं और अत्यंत निम्न वर्ग को छोड़कर स्त्री आज भी सर्वत्र पितृसत्तात्मक व्यवस्था के अन्तर्गत ही

है। यही कारण है कि जीवन भर अपने शोषण और प्रताड़ना की कुंठा वह अपनी बहू-बेटियों पर निकालती है। हम कान चाहे जितना बंद कर लें, आज यह स्थिति अवश्य है कि हमें नारी स्वातंत्र्य की अनुगूँज सुननी ही पड़ेगी।

महात्मा गांधी को कई मायनों में पुरातन पंथी और धर्मनिष्ठ माना जा सकता है। इसके बावजूद उनका कथन था कि–''समाज के संघर्षों में पुरुषों के साथ मिलकर शिरकत किये वगैर औरत अपनी आजादी की लड़ाई को प्रभावी ढंग से नहीं लड़ सकती।'' नारी-सशक्तीकरण को महात्मा गांधी की सबसे बड़ी देन है कि उन्होंने आजादी की लड़ाई के दौरान पहली बार जनता के हर वर्ग और हर समुदाय की शहरी-ग्रामीण, साक्षर-निरक्षर, आदिवासी-अभिजात, अशिक्षित-सुशिक्षित हर तरह की स्त्री को अंग्रेजों के खिलाफ सड़क पर उतारा।

महात्मा गांधी ने जो कहा, वह पुरुष और स्त्री दोनों के लिए बराबर की बात है–''पहले सार्वभौम और सार्वजनिक संघर्ष करो फिर अपने लिए करो तभी सफलता मिल सकती है। किन्तु आज महात्मा गांधी के अनुयायी, महात्मा गांधी के नाम को भुनाने वाले राजनेता केवल वचनवीर ही दिखाई पड़ते हैं। हकीकत यह है कि देश में औसतन हर घण्टे दुष्कृत्य के आँकड़े बढ़ते ही जा रहे हैं। भारत के हर छोटे-बड़े शहर में अपराध इतने बढ़ गये हैं कि कितनी ही मासूम बालिकाओं के प्रति दुर्व्यवहार और इससे भी आगे बलात्कार तक की घटनाएँ दृष्टि में आ रही हैं। तस्वीर का एक पहलू दिखाने का है और दूसरा प्रच्छन्न रूप से उसके शोषण का। नाम कमाने के लिए समाज आज भी थोड़ी  दूर तक ही महिला सशक्तीकरण के साथ चल पाता है। अन्यथा जैसा कि मैंने कहा कि निष्पक्ष भाव से देखा जाए तो दहेज-दानव की दरिंदगी आधी दुनिया को आज भी खा



और निगल रही है। बहुत सारे प्रश्न और समस्यायें, यहाँ तक कि जिस प्रथा का बीज तक राजा राम मोहन राय ने समाप्त कर दिया था, वह सती-प्रथा आज भी जीवित है। अन्याय, हिंसा, शोषण, उत्पीड़न और अनेक प्रकार के दोहन के शिकार, स्त्रियों के घर-परिवार की दहलीज से अदालत के दरवाजे तक बहुत लम्बी-चौड़ी गहरी खाई है, जिसे पार करना आज भी औरत के लिए दु:साध्य है। प्रतिशत के रूप में अगर देखा जाय तो आज भी नौकरियों में, महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में वही महिलायें जा रही हैं, जो उच्च वर्ग अथवा उच्च मध्य वर्ग से सम्बद्ध हैं। इस प्रकार महिला सशक्तीकरण के पुरजोर और भरपूर आन्दोलन के बावजूद कविवर मैथिली शरण गुप्त की यह पंक्ति–''**अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी आँचल में है दूध और आँखों में पानी।**'' असत्य तभी सिद्ध होगी और नारी-मुक्ति-आन्दोलन तभी सार्थक होगा, जब हमारा समाज, हमारा देश और हमारा राष्ट्र कविवर जयशंकर प्रसाद की पंक्तियों को सार्थक करेगा–''**नारी तुम केवल श्रद्धा हो, विश्वास रजत नग पग-तल में/पीयूष-स्रोत-सी बहा करो, जीवन के सुन्दर समतल में।**''

❐❐❐

# कामकाजी महिलायें : नारी उत्क्रान्ति

इक्कीसवीं सदी नारी-शक्ति का नया सूर्योदय लेकर आई है। हमारी आजादी को छह दशक हो गये और इन छह दशकों में हमारी नारी-शक्ति महाशक्ति बनने के मुहाने पर खड़ी है। इक्कीसवीं सदी में नारी शक्ति यह उदघोषणा कर रही है कि हम केवल सम्मानपूर्वक जी ही नहीं सकते, वरन् इस जीने के लिये पुरुष के बराबर जद्दोजहद भी कर सकते हैं। आज आधुनिकता ने पुरुषों के वर्चस्व का महल ध्वस्त कर दिया है और नारी का दुर्गावतरण अपनी शक्ति के जज्बे से एक नया भारत गढ़ने की तैयारी कर रहा है। 'घूँघट और पर्दे' की ओट में ही जिन्दगी गुजार देने वाली नारी की विराट गतिमयता के स्रोत ने जिस तरह स्वातंत्र्य-आन्दोलन के समय गांधी के आह्वान में पर्दा-प्रथा को तोड़ा था, उसी तरह आज पंचायती राज वाली व्यवस्था ने एक झटके में नारी को कामकाजी बना दिया है।

भूमण्डलीकरण और विश्वबाजार के दौर में स्त्री भी आज अपनी मेहनत का मोल लेने को तैयार हो गई है। आज से पहले हमारे समाज का मुख्य आधार होते हुए भी नारी अपने अस्तित्व के लिए समाज की ओर देखती थी, उसका मुँहताज बनी रहती थी। आज वक्त बदला है तो ये घर से बाहर की दुनिया देख और समझ रही हैं। आज हर क्षेत्र में आत्मनिर्भर महिलायें अपने कामकाजी होने का झण्डा बुलंद कर रही हैं। आर्थिक स्वतंत्रता और स्वतंत्र पहचान की चाहत ने महिलाओं को कामकाजी बनने की राह दिखाई है। यही कारण है कि पुरुष-प्रधान समाज में ये अपना स्थान बनाने में सफल हुई हैं। अपनी काबिलियत से इन्होंने उस हर क्षेत्र में भी अपना मुकाम बनाया है जहाँ इनका प्रवेश भी समाज को अस्वीकार्य था।

पुरुष आज से ही नहीं, पहले से भी, केवल बाहर के काम से सम्बन्ध रखते रहे और इसी का श्रेय लेकर अपना भी और अपने भाई-बन्दों की भी पीठ ठोकते रहे। आज की महिला की शक्ति इस अर्थ में तो अपार कही जा सकती है कि एक ओर ये अपनी और अपने घर-परिवार की, बाहर की नौकरी कर, जरूरतों को पूरा करती हैं तथा दूसरी ओर ये अपनी नई पहचान बनाने की कोशिश में भी लगी हैं। आज की नारी की यह चाहत क्षमता से अधिक कार्य करने के लिए उसे उत्प्रेरित करती है। मर्द अपनी दो भुजाओं से काम करके चाहे जो इतिहास बनावे लेकिन नारी तो आज कई भुजाओं और कई मस्तिष्कों से एक साथ काम कर रही है। कामकाजी महिला रोजाना दोहरा तनाव झेलती है। एक तरफ नौकरी का दबाव और दूसरी तरफ घर लौटने की जल्दबाजी। घर और बाहर के कामकाज से, परेशानियों से जूझते हुए उनका शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य बिगड़ने की ओर अग्रसर होता है। सरकारी नौकरी करने या किसी भी प्रकार की नौकरी करनेवाले को आकस्मिक छुट्टी मिलती है लेकिन घर में माँ, पत्नी और बहन के रूप में खटने वाली किसी भी नारी के लिए किसी आकस्मिक छुट्टी का कोई प्रावधान नहीं है। उसे चौबीसों घण्टे और सातों दिन काम करते रहना पड़ता है। यह ठीक है कि हमारा अभिप्राय यहाँ कामकाजी महिलाओं से, ऐसी औरतों से हैं, जो

किसी-न-किसी तरह की नौकरी के पेशे में है। ऐसी महिलाओं को तो और भी चैन नहीं। इन्हें आराम करने तक का मौका नहीं मिलता। ये कभी तो कार्यालय की खटपट, कभी बॉस से द्वन्द्व, कभी सहकर्मियों की उलझन और कभी मिनियल स्टाफ की शिकायतें, सबसे आमना-सामना करती हैं और कभी घर की किन्हीं जरूरतों और पति के आलस्य अथवा उनके पूर्ण अनुशासन एवं प्रतिरोध से भी जूझती रहती हैं।

दरअसल हमारे देश में इस प्रकार की मान्यता है कि घर को व्यवस्थित रखना सिर्फ औरतों का दायित्व है। आप देखेंगे कि अधिकतर घरों में दफ्तर से लौटने के बाद पति महोदय टेलिविजन देख रहे हैं और बेचारी पत्नी दफ्तर से लौटकर रसोई घर में पति, बच्चों तथा घर के अन्य सदस्यों के लिए नाश्ता तैयार कर रही है। इस प्रकार की जीवन शैली की वजह से भारतीय महिलायें कभी भी अपने को स्वतंत्र अनुभव नहीं करतीं। अमेरिका या ब्रिटेन में पुरुष और महिलायें दोनों मिलकर घरेलू जिम्मेदारी का निर्वहन कर लेते हैं। इसमें कोई शक नहीं, कि दोहरी जिम्मेदारी निभाना बहुत बड़ी चुनौती है। बाहर दफ्तर में अपने काम के प्रति इन्हें उत्तरदायी होना पड़ता है और घर में पति को भी खुश रखना पड़ता है। इन दोनों जिम्मेदारियों को निभाते-निभाते इनके मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है। भारतीय मानसिकता में तो किसी पुरुष की पत्नी यदि कामकाजी महिला है, तो दफ्तर से कभी उसके देर से आने के कारण पर भी पति महोदय अकारण बिगड़ जाते हैं और मलाल रखते हैं। कभी-कभी यह बात अन्ततः संदेह तक जा पहुँचती है और कामकाजी महिला का दाम्पत्य जीवन चरमराने लगता है।

प्रायः महिला कर्मचारियों की आलोचना कार्यालय में कार्यरत पुरुष कर्मचारियों द्वारा भी की जाती है। इनका कहना होता है कि



कामकाजी महिलायें अपनी घरेलू परेशानियों का एक मोटा पुलिंदा साथ लिये घूमती हैं। कभी उनके बच्चों की तबीयत बिगड़ जाती है, कभी मेहमान आ जाते हैं, तो कभी त्योहार और कभी खुद अस्वस्थ हो जाती हैं। निश्चित रूप से कामकाजी महिला को द्वैत जीवन जीना पड़ता है। उनका बायाँ मस्तिष्क घर पर रहता है तो दायाँ घर के बाहर। उन्हें बीमार बच्चे को भी छोड़कर, अपनी ममता का उत्सर्ग कर, दफ्तर आना पड़ता है। यह तो निश्चित ही है कि मस्तिष्क और हृदय में द्वन्द्व लिये हुए एक नारी आज तलवार की धार पर नौकरी अथवा व्यवसाय करती है। महिलाओं के लिए आवश्यकता इस बात की है कि ये अपने हृदय और मस्तिष्क में संतुलन रखकर दफ्तर के काम के साथ घरको अलग रखने की प्रवृत्ति विकसित करें। सच्ची बात तो यह है कि कामकाजी महिला को अपने हृदय और मस्तिष्क के स्तर पर कई मोर्चों पर जूझना पड़ता है—घर के मोर्चे पर और दफ्तर के पदाधिकारी और कर्मचारियों के स्तर पर, समाज के स्तर पर और देश तथा राष्ट्र की चिन्ता के स्तर पर। सामाजिक टिप्पणियों से, जो टिप्पणियाँ अक्सर ही अच्छी नहीं होतीं, से उन्हें हर जगह जूझना पड़ता है। कई पुरुष कर्मचारी महिलाओं की गतिविधियों की निगरानी करते रहते हैं। महिला कर्मचारी किसी काम को लेकर दस-पन्द्रह मिनट के लिए भी यदि अपने सीट पर उपस्थित नहीं रहें, तो पुरुषों को चिंता होने लगती है। अक्सर ये बॉस से भी चुगली करते रहते हैं। पुरुष वर्ग अगर अपनी मानसिकता में बदलाव लायें तो साधारण बुद्धि की महिलाएँ भी दफ्तर में बड़े-बड़े कार्यों और समस्याओं का निपटारा आसानी से कर सकती हैं। यह भी शिकायत की जाती है कि अक्सर कामकाजी महिलायें आगे बढ़कर कोई काम स्वयं माँगने या करने में उत्साह नहीं दिखातीं। ये एक लक्ष्मण रेखा बनाये रहती हैं और निश्चित और नियमित दायरे से निकलने में हिचकिचाती हैं।

उनका रुझान अपनी जिम्मेदारियों को उम्दा तरीके से निभाने एवं नई योग्यता हासिल करने के प्रति कम रहता है।

इस बात को मैं सिरे से खारिज इसलिए करती हूँ कि आज जितनी भी महिलायें किसी भी क्षेत्र में कार्य कर रही हैं, वे बड़ी कुशलता से मर्दों को डॉज देते हुए आगे बढ़ रही हैं। चन्दाकोचर आई.सी.आई.सी.आई. बैंक के मैनेजिंग डायरेक्टर हैं। इसके साथ ही ये चीफ एक्जीक्यूटीव भी हैं। अवस्था मात्र सैतालिस वर्ष है। इनकी योग्यता और प्रबंधन का लोहा सर्वश्रेष्ठ विजनेस पत्रिका 'फोर्ब्स' ने भी माना और चन्दा कोचर को दुनिया भर की एक सौ सशक्त महिलाओं में शामिल करते हुए बीसवाँ स्थान दिया। चन्दा कोचर एक कुशल वित्तीय प्रबंधक हैं और मानती हैं कि वे पुरुषों के मुकाबले किसी भी प्रकार के प्रबन्धन की चुनौती का सही प्रकार से मुकाबला कर सकती हैं और उसे सम्भाल सकती हैं। निरूपमा राव जो भारतीय विदेश सचिव के रूप में कार्यरत रही हैं और अब अमेरिका में भारत की नयी राजदूत हैं, ये किसी भी पुरुष के मुकाबले में सर्वाधिक कार्य कर रही हैं। किरण वेदी का नाम कौन नहीं जानता, जिन्होंने विभिन्न पदों पर रहते हुए अपनी कार्यकुशलता का परिचय दिया है। सुनीता नारायण ने भारत में लोगों को पर्यावरण के प्रति जागरूक बनाया है। उसी तरह ज्ञान सुधा मिश्रा सुप्रीम कोर्ट में न्यायाधीश का कार्य अत्यंत कुशलता से सम्पन्न कर रही हैं। सामाजिक कार्यकर्त्ता मेघा पाटकर का नाम 'नर्मदा बचाओ' आन्दोलन से जुड़कर अमर ही हो गया है।

मेरा मानना तो यह है कि पुरुष वर्ग अगर घर से जुड़ी जिम्मेदारी में साझेदारी करें तो कामकाजी महिलायें अपनी क्षमता का प्रदर्शन और भी अच्छी तरह से कर सकती हैं। महिलाओं के अतिरिक्त जो लड़कियाँ अभी स्कूल अथवा कॉलेज में पढ़-लिख रही हैं, वे भी अपनी सफलता का परचम लहराने में लड़कों से कहीं भी कम नहीं हैं। घर के कामकाज के अतिरिक्त उनकी तेजस्विता



'काबिलेतारीफ' है। ऐसी लड़कियाँ सकारात्मक रूप से अपने कार्य पर ध्यान देती हैं और नकारात्मक टिप्पणियों को नजर अंदाज कर जाती हैं। कितनी ही लड़कियाँ आईएएस और बैंक सर्विस जैसी परीक्षाओं में टॉपर रहती हैं। टॉपर के अतिरिक्त कई अन्य स्थान भी ये प्राप्त करती हैं और इस प्रकार अपने परिश्रम का पैगाम अपनी अन्य सखी-सहेलियों और साथियों तक भी पहुँचाती हैं। कामकाजी महिलायें अपने कार्यक्षेत्र से जुड़ने के साथ ही अपने सहयोगियों के कार्यों में भी सहायता करती हैं और इस प्रकार वे सहानुभूति ही नहीं सम्मान का पात्र भी होती हैं। साथ-साथ काम करने से सहयोगी का उनके प्रति मित्र भाव भी बन जाता है। ये मित्र भी महिला के कार्यों में हाथ बंटाते हिचकते नहीं। इस मित्रता का अगर संतुलित ढंग से उपयोग किया जाय तो यह बहुत लाभदायक होती है। इसका अनावश्यक उपयोग परेशानी पैदा करता है। अक्सर ऐसा होता है कि भावावेश में कई बार महिलायें अपनी समस्यायें अपने पुरुष मित्रों से बताती हैं जिससे इन पुरुष मित्रों का हस्तक्षेप घर तक पहुँच जाता है जो घरवालों को नागवार गुजरता है। यह भी कोई अच्छी बात नहीं। महिलायें यदि आत्मनिर्भर हैं और वह बाहर जाती हैं तो काम के सिलसिले में उनके मित्र बनेंगे ही और उचित मामलों में वे विमर्श भी करेंगी ही। इसका विरोध करना, चाहे जिनके द्वारा भी यह विरोध हो, व्यक्ति की स्वतंत्रता के मौलिक अधिकार पर चोट करना है।

इसमें कोई शक नहीं कि रूढ़ियाँ हैं, बेड़ियाँ हैं, जकड़नें हैं, उलझनें हैं, फिर भी नारी कामकाज के क्षेत्र में अपने कदम क्षिप्रगति से बढ़ा रही है। अब वह गजगामिनी नहीं, शीघ्रगामिनी बन गई है। हमें ऐसी नारी का अभिनंदन करना चाहिए, उसका उत्साहवर्द्धन करना चाहिए, उसका पथानुसरण करना चाहिए।

❐❐❐

# बालिकाएँ और उच्च शिक्षा

पुख्ता मकान के लिए जैसे गहरी नींव की आवश्यकता होती है, वैसे ही छत की भी। अगर केवल नींव बना दी जाए और उस पर मकान तामीर न हो तो भी उसकी कोई उपयोगिता नहीं और केवल छत तो हवा में बन नहीं सकती। इसलिए लड़कियों के लिए प्राथमिक शिक्षा जिस तरह अनिवार्य है उसी तरह उच्च शिक्षा भी। प्राथमिक शिक्षा तो शिक्षा की बुनियाद है। वह औपचारिक और अनौपचारिक दोनों हो सकती है। किन्तु उच्च शिक्षा तो अत्यंत ही औपचारिक है। उच्च शिक्षा के लिए लड़कियों में आत्मविश्वास और साहस का होना आवश्यक है। शिक्षा केवल लड़कों के लिए ही आवश्यक नहीं, लड़कियों के लिए भी उतना ही आवश्यक है। नर और नारी की अनन्यता, एकरूपता और समस्वरता की सार्थकता तभी होगी जब हम लड़कियों के लिए भी उच्च शिक्षा की व्यवस्था करें। लड़के-लड़कियों की शिक्षा से दोनों की अपूर्णता में पूर्णता विकसित होती है। लड़कियाँ जब उच्च रूप से शिक्षित होंगी तभी वे उच्च साहित्य, उच्च प्रौद्योगिकी, उच्च नैतिकता और उच्च संस्कृति की स्थापना कर सकती हैं। साहित्य नारी के बिना आधा-अधूरा और एकांगी है। संस्कृति नारी के बिना अपंग है। इसलिए सृष्टि के उषाकाल से ही नारी साहित्य और संस्कृति का आधार रही है। उसकी उच्च शिक्षा बच्चों और पुरुषों में भी कोमल भावनाओं का संचार करती है और उसके अतिरिक्त कल्पनाओं के निरभ्र आकाश में उड़ने के लिए प्रेरित करती रहती है। नारी स्वयं एक कविता है। एक परिपूर्ण साहित्य है और इस नारी की पवित्रता, शुचिता और सौन्दर्य के सोने की अंगूठी में अगर उच्च शिक्षा का नगीना जड़ दिया जाय तो उसकी चमक कितनी आबदार होगी, यह देखने और पहननेवाला ही अनुभव कर सकता है। नारी की उच्च शिक्षा ने समाज और संस्कृति को अपूर्व योगदान किया है।

गार्गी की शिक्षा अगर उच्च परिपूर्ण नहीं रहती तो वह जनक जैसे तत्त्वज्ञ राजा के दरबार में याज्ञवल्क्य से कैसे शास्त्रार्थ कर पाती ?

भारत में स्त्रियों की स्थिति प्राचीन काल से ही गरिमापूर्ण रही है। भारतीय इतिहास में ऐसी अनेक नारियों का उल्लेख मिलता है, जिनकी प्रेरणा से भारत की राष्ट्रीय एकता को अक्षुण्ण बनाये रखने में मदद मिली है। मंडन मिश्र की पत्नी भारती ने उस समय के प्रसिद्ध वेदान्ती विद्वान शंकराचार्य को शास्त्रार्थ में हराया था। गार्गी, अपाला और विश्ववारा आदि महिलाओं ने तो श्रृषियों का स्थान अपनी विद्या से प्राप्त कर लिया था। उन्हें श्रृषिका कहा भी जाता है। दशरथ की रानी कैकेयी युद्ध कला में निपुण थीं। रणभूमि में दशरथ के प्राण उन्होंने ही बचाया था।

मध्य युग में नारियों को रणनीति और राजनीति की उच्च शिक्षा प्राप्त थी। रानी दुर्गावती, पद्मिनी, झाँसी की रानी लक्ष्मी बाई,

बेगम हजरत महल उस समय की प्रख्यात नारियाँ हैं, जिन्होंने हंसते-हंसते देश के लिए अपने प्राण न्योछावर किये थे। अहल्याबाई तथा ताराबाई, कर्मावती, कमला, कर्णवती आदि का नाम आज भी आदर पूर्वक लिया जाता है। किन्तु धीरे-धीरे नारियों की स्थिति खराब होती गई। नारियों को पर्दा-प्रथा, बाल-विवाह, बहु-विवाह, सती प्रथा आदि कुरीतियों में जकड़ दिया गया। देश में नारियों को शिक्षित नहीं किया जा सका और समाज के आधे अंग को लकवा मार गया। किन्तु आज महिलायें घर की चहारदीवारी से निकलकर, इन सारी कुरीतियों को ठुकराकर जिनसे वे त्रस्त थीं, हर क्षेत्र में पुरुषों के साथ कंधा-से-कंधा मिलाकर राष्ट्र के निर्माण में पूरा सहयोग कर रही हैं।

समाज को अगर हम पटरी पर रखना चाहते हैं, गतिशील बनाना चाहते हैं और गतिशीलता की सही दिशा अगर हम निर्धारित करना चाहते हैं, तो लड़कियों को हमें उच्च शिक्षा देनी ही होगी। शिक्षा का उद्देश्य ज्ञान-दान करना और प्रशिक्षण देना तो है ही, साथ ही साथ इसका मुख्य उद्देश्य है,– मानव को मानव बनाना, एक सम्पूर्ण मानव, उत्तम मानव बनाना।

शिक्षा जीवन के विकास के लिए दीप-शिखा का कार्य करती है। यह मील का पत्थर की तरह हमें ज्ञान की दूरियाँ और निकटता तथा हमारी जड़ता और गतिशीलता का संकेत करती है। शिक्षा के द्वारा व्यक्ति अपने मन, आत्मा तथा शरीर के विशिष्ट गुणों का विकास करता है। व्यक्ति के विकास पर ही राष्ट्र का विकास संभव है। अत: शिक्षा की अनिवार्यता एवं उपयोगिता, उसमें भी उच्च शिक्षा की और वह भी लड़कियों के लिये स्वयंसिद्ध है।

आज वैश्वीकरण के युग में, जब विकास चौतरफा खुला है, हमारे देश को भी इसमें आगे रहना होगा। हर्ष का विषय है कि उच्च



शिक्षा के प्रति नारियों की अभिरुचि और रुझान में आशातीत प्रगति हुई है। अब हर परिवार की नारियों को यह सुविधा सरकार द्वारा प्राप्त कराई गई है कि वे अपनी रुचि के अनुसार उच्च शिक्षा ग्रहण करें और देश को आगे बढ़ावें। लड़कियाँ उच्च शिक्षा प्राप्त कर किसी भी उत्तरदायी पद को सम्भालने में पूर्ण सक्षम होंगी और समाज में फैली कुरीतियों और बुराईयों को दूर करने में सफल होंगी। औरत की बात औरत सहजता से समझ जाती है। लड़कियाँ उच्च शिक्षा प्राप्त कर इसे अन्य महिलाओं तक भी पहुँचायेंगी, उन्हें प्रेरित करेंगी, सुशिक्षित करेंगी।

उच्च शिक्षा नियोजन के लिए तो आवश्यक ही है। जब नारियाँ उच्च शिक्षिता होंगी तो परिवार के भरण-पोषण का भार केवल पुरुष के कन्धों पर ही नहीं रहेगा। परिवार की आर्थिक स्थिति इससे मजबूत होगी तथा भावी सन्तान के पालन-पोषण, शिक्षा-दीक्षा एवं रहन-सहन का स्तर भी उच्च होगा। पुरानी मानसिकता वाले पिता अपनी पुत्री की शादी उसी परिवार में करना ज्यादा पंसद करते हैं जिस परिवार में पैसा हो, पद हो, शोहरत हो, चमचमाती कार हो, जो आँखों को चकाचौंध कर दे। कटु यथार्थ तो यह है कि इस मोह में शिक्षित नारियाँ भी फँसती जा रही हैं। दहेज की प्रथा को बढ़ावा इसीलिये मिलता है कि कम पढ़ी-लिखी अन्डर मैट्रिक या मैट्रिक उत्तीर्ण लड़कियाँ अपने जीवन को शिक्षा की रोशनी से उजागर न करके पाशविक प्रवृत्तियों का शिकार नैहर और ससुराल दोनों जगह होती रहती हैं। नैहर वाले दहेज न जुटा पाने के कारण लड़की को कोसते हैं और ससुराल वाले खूब दहेज न मिलने के कारण उन्हें जिंदा जला देने की भी चेष्टा करते हैं। इन सारी प्रवृत्तियों से छुटकारा पाने के लिए लड़कियों को आगे आना होगा और उन्हें उच्च शिक्षित

होकर समाज के दिखावे के विरुद्ध समाज से धर्मयुद्ध करने की शक्ति अपने में उत्पन्न करनी होगी।

महात्मा गांधी के आह्वान पर पढ़ी-लिखी महिलाओं ने भी आजादी की लड़ाई में नेतृत्व प्रदान किया। यह ठीक है कि इसमें अशिक्षित महिलाओं का भी योगदान अवश्य रहा किन्तु उच्च शिक्षिताओं, सुचेता कृपलानी, कमला नेहरू, सरोजिनी नायडू, श्रीमती विजय लक्ष्मी पंडित आदि ने उस समय की राजनीति और समाज को एक नई दिशा दी। इंदिरा गांधी अपनी शिक्षा-दीक्षा के बल पर ही अत्यन्त साहसी और आत्मविश्वासी हो सकीं। 1975 ई. में इमर्जेन्सी लगाते उन्हें देर नहीं लगी अन्यथा उस इमर्जेन्सी में एक तानाशाह की भाँति वे डँट न जातीं और अपने पिता तक के साथियों को जेल भेजने में कोताही नहीं करतीं। 1975 की इमर्जेन्सी के कारण ही 1977 में उनका कांग्रेस-दल चुनाव में बुरी तरह हारा। देश की सभी पार्टियाँ लगभग एकमत हो गईं और जो इंदिरा गांधी स्वप्न में भी अपनी पराजय की बात नहीं सोचती थीं, उन्हें हार का मुख देखना पड़ा। इंदिरा गांधी को अलग से पं. नेहरू पद्धति पूर्ण ढंग से शिक्षित न किये होते तो इंदिरा गांधी एक सामान्य नारी की भाँति अपनी हार के बाद बैठ जातीं। लेकिन नहीं, उन्होंने 1980 में भी फिर चुनाव लड़ा और फिर देश की प्रधानमंत्री बनीं। यह है उच्च शिक्षा का कमाल, जो जीवन में गिरने वाले को उठाती है, रोने वाले के आँसू पोंछती है और धनवानों की सम्पत्ति का संरक्षण और श्रृंगार करती है। उच्च शिक्षा ही किसी देश के विकास का मेरुदण्ड है।

आज महिलायें संसद तथा विधान मण्डलों में बैठकर सरकार के कार्यों में जो सराहनीय भागीदारी निभा रही हैं, यह जागरूकता महिलाओं में उच्च शिक्षा का ही प्रतिफल है। निश्चय ही राष्ट्र के



विकास में उच्च शिक्षित महिलाओं की भूमिका को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है। साहित्य में तो स्त्री लेखकों का अभी दौर ही चल रहा है। शिवानी, मन्नू भंडारी, मैत्रेयी पुष्पा, प्रभा खेतान, चित्रा मुद्गल, अलका सरावगी, अनामिका, मृणाल पाण्डेय आदि ऐसी लेखिकायें हैं, जो समाज को अपनी रचनाओं द्वारा एक विशेष दिशा दे रही हैं।

आजादी के बाद आज महिलायें संसद तथा विधान मंडलों में बैठकर सरकार के कार्यों में भागीदारी कर रही हैं। बड़े-बड़े राजनीतिज्ञों ने यह महसूस किया है कि महिलाओं में यह जागृति, यह कार्य के प्रति निष्ठा और यह उत्साह उच्च शिक्षा का ही फल है। आज महिलायें राजनीति एवं अन्य क्षेत्रों मे कुशलतापूर्वक भाग लेकर देश का नाम रौशन कर रही हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद महिलाओं में नवजागरण के लिए अनेक उपाय किये भी गये हैं। परतंत्र भारत में नारी और पुरुष की शिक्षा में काफी असमानता थी, जिसे अब संविधान से हटा दिया गया है और आशा व्यक्त की गई है कि राज्य के किसी भी नागरिक के विरुद्ध केवल धर्म, जाति, लिंग, स्थान के आधार पर कोई भी विभेद नहीं कर सकता। सरकार की ओर से लड़कियों की शिक्षा के लिए गंभीर प्रयत्न किये जा रहे हैं। लड़कियों में शिक्षा के प्रचार एवं प्रसार के लिए अनेक बालिका विद्यालय, मातृ-सेवा सदन, महिला-शिल्प-भवन आदि अनेक गैर सरकारी संस्थायें भी काम कर रही हैं। सुदूर देहाती क्षेत्रों में भी अब +2 की पढ़ाई जारी हो गई है और लड़कियों के लिए पूर्व से कार्यरत माध्यमिक विद्यालयों के अतिरिक्त अपने राज्य के प्रत्येक प्रखण्ड में मातृ-सेवा-सदन, महिला शिल्प भवन आदि अनेक गैर सरकारी संस्थायें भी काम कर रही हैं। अनेक प्रखण्डों में कॉलेज भी खोले जा

रहे हैं। राज्य में लड़कियों की सुविधा के लिए अनेक स्थलों पर अलग कॉलेज खोले जा रहे हैं। कोठारी आयोग ने भी लड़कियों में उच्च शिक्षा के प्रसार के लिए अनेक अनुशंसायें की हैं। लड़कियों के लिये अलग से कॉलेज खोलने से यह हुआ है कि लड़कियाँ इसमें धड़ल्ले से प्रवेश ले लेती हैं। लड़कों के कॉलेजों में भी लड़कियों के नामांकन की विशेष सुविधा दी गई है। उच्च शिक्षित लड़कियों के लिए सरकारी नौकरियों में 30 प्रतिशत आरक्षण की सुविधा दी गई है। साक्षात्कार में भाग लेने के लिए नि:शुल्क यात्रा की सुविधा दी गई है। प्रतियोगिता परीक्षा में भाग लेने के लिए परीक्षा शुल्क की राशि में कमी की गई है। लड़कियों में उच्च शिक्षा के विकास के लिए सरकार सम्पूर्ण महिला शिक्षा को नि:शुल्क कर प्रतियोगी परीक्षाओं के लिए विशेष केन्द्र और कोचिंग सेंटर की व्यवस्था कर रही है।

बिहार सरकार के 1990 के एक पत्र के आलोक में छात्र कल्याण संकायाध्यक्ष श्री विजय प्रसाद सिंह के अग्रसारण पर ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, कामेश्वरनगर, दरभंगा के वर्तमान कुलपति डॉ. समरेन्द्र प्रताप सिंह ने विश्वविद्यालय के स्नातकोत्तर विभागों एवं अंगीभूत महाविद्यालयों में छात्राओं को नि:शुल्क शिक्षा देने का ऐतिहासिक प्रस्ताव रखा। दिनांक 21 फरवरी 2011 को सम्पन्न अभिषद् (सिंडिकेट) की बैठक में यह प्रस्ताव रखा गया था। मिथिलांचल की स्त्री शिक्षा के क्षेत्र में कुलपति डॉ. सिंह की यह सोच स्वर्णाक्षरों में अंकित रहेगा। सरकार की ओर से किये जाने वाले प्रयासों के परिणाम भी काफी अच्छे मिल रहे हैं।

उच्च शिक्षा प्राप्त आज की लड़कियाँ भारतीय स्तर की प्रतियोगिता परीक्षाओं में काफी संख्या में शामिल हो रही हैं, सफल भी हो रही हैं और उच्च प्रशासनिक पदों पर नियुक्त भी हो रही हैं।



राज्य स्तरीय प्रतियोगिता परीक्षाओं में तो उनकी संख्या काफी उत्साहवर्द्धक है। तकनीकी शिक्षा के क्षेत्र में भी लड़कियाँ काफी आगे आ रही हैं। चिकित्सा के क्षेत्र में भी इनकी संख्या बहुत है। सेवा शुश्रूषा और उपचार करने में महिलायें जितनी दक्ष होती हैं उतने पुरुष नहीं। महिला डाक्टर बीमार लोगों की देखभाल एवं सेवा शुश्रूषा तथा दवा-दारू की तरफ विशेष जागरूक एवं कर्त्तव्यनिष्ठ होती हैं जिससे मानव-कल्याण में भी काफी विकास एवं सुविधा हुई है। कृषि, पशुपालन, उद्योग-प्रबन्धन, इन्जीनियरिंग तथा कम्प्यूटर के क्षेत्र में भी इनकी उत्साहवर्द्धक प्रगति है। कॉलेजों तथा युनिवर्सीटीज में लड़कियों का नामांकन, उपस्थिति, अध्ययन की गंभीरता, परीक्षा के परिणाम लड़कों से कहीं अच्छे हैं। सच तो यह है कि लड़कियाँ लड़कों से योग्यता में आगे बढ़ती नजर आ रही हैं और इस शेर का आशय चरितार्थ कर रही हैं–**''हमको मिटा सके ये जमाने में दम नहीं, हमसे जमाना खुद है, जमाने से हम नहीं।''** आज नारी अबला नहीं रही। बल्कि उच्च शिक्षा की रोशनी और चमक ने इसकी मति, गति और चरित्र में निखार ला दिया है। उच्च शिक्षा के क्षेत्र में लड़कियाँ उद्यमी, मेहनती, सहनशील और दिमागी तौर पर मजबूत दिखाई पड़ती हैं। अभी प्रबन्धन की पढ़ाई का बहुत जोर है। लड़कियाँ तो जन्मजात प्रबंधन-कुशल होती हैं। उसमें भी प्रबंधन की पढ़ाई तो उन्हें और माँज देती हैं। ये कई कौरपोरेट संस्थाओं में प्रबंधक और सीइओ का दायित्व सफलता पूर्वक निर्वहन कर रही हैं। स्पष्ट है कि आज लड़के-लड़की का अन्तर कहीं भी दिखाई नहीं पड़ता। एक समय था जब उच्च शिक्षा के क्षेत्र में उड़ीसा, बिहार, उत्तर प्रदेश, असम, मध्य प्रदेश, राजस्थान आदि क्षेत्र खासकर हिन्दी-प्रदेश अत्यंत पिछड़े थे, किन्तु आज की स्थिति यह है कि उच्च शिक्षा के क्षेत्र में ये सभी

प्रदेश 18 से 20 प्रतिशत आगे बढ़ चुके हैं। अगर सम्पूर्ण दृष्टि से देखा जाये तो नारियेां की उच्च शिक्षा में बढ़ोत्तरी खूब ही हुई है और जिस प्रकार वैदिक काल की नारियाँ अपाला, घोषा, अरुन्धती, अनुसूया आदि ने अपने चिंतन से नारी-जगत् को नई दिशा दी, नया प्राण-संचार किया, उसी प्रकार आज विज्ञान, उद्योग, राजनीति, व्यवसाय, शिक्षा, अभियांत्रिकी, कम्प्यूटर आदि अनेक क्षेत्रों में उच्च शिक्षा प्राप्त नारियाँ 'इक्कीसवीं सदी' को 'नारी की सदी' के रूप में चरितार्थ कर रही हैं।

❐❐❐



# दहेज दानव और महाचण्डी

अगर प्राचीन काल में प्रवेश करें, तो दहेज का वैसा घृणित और वीभत्स रूप नहीं मिलता जैसा आज हम चारो तरफ देख रहे हैं। दहेज का संस्कृत तत्सम शब्द 'दायज' है जिसका अर्थ होता है कि जो हमारे ऊपर देय है या जो देने का उचित पात्र है, उससे जनमा हुआ अधिकार। इस प्रकार 'दायज' शब्द का सीधा अर्थ है–स्वेच्छापूर्वक जिसके प्रति हमारा कर्त्तव्य है उसे दिया जाना। गोस्वामी तुलसीदास ने इस शब्द का प्रयोग अपने ग्रन्थ 'रामचरितमानस' में शिव-पार्वती-विवाह के संदर्भ में किया भी है–**''दायज दियो बहु भाँति''**।

जैसे नदी अपने उद्गम स्रोत से निकलकर जब बाहर प्रवाहित होती है तब उसमें अनेक प्रकार के खर-पतवार और गंदगी मिश्रित हो जाती हैं। नदी का जल दूषित हो जाता है और विशुद्ध नदी अपने मूल रूप से बहुत अलग और विकृत हो जाती है, वही स्थिति आज दहेज प्रथा की है। भारतीय संस्कृति का यह जितना ही सम्मानार्थक शब्द रहा है उतना ही यह आज दूषित और कलंकित हो गया है। आज इक्कीसवीं सदी में तो नारी स्वातंत्र्य को लेकर जो आन्दोलन और संघर्ष हो रहे हैं, दहेज-उत्पीड़न बहुत कुछ बंद होने की स्थिति

में है, किन्तु अभी भी यह पचास प्रतिशत तो कायम है ही। इस सम्बन्ध में जो चतुर व्यापारी और कुशल कलाकार हैं, वे पहले से ही सारी व्यवस्था किये रहते हैं और पत्थर की ओट में शिकार खेल लेते हैं। छुप-छुपाकर सारी व्यवस्था हो जाती है।

दहेज दानव हमारे समाज के लिए आज भयंकर अभिशाप बन गया है। जैसा कि कहा गया, वास्तव में, वरपक्ष को कन्या पक्ष से स्वेच्छा से मिलनेवाला उपहार ही दहेज है, किन्तु इसे जबरन विवाह की बात पक्की करते समय एक मोटी राशि के रूप में लोग निर्धारित कर लेते हैं।

उच्च वर्ग की बात तो अलग है। मध्यम और साधारण वर्ग के लोग भी आज इस भयंकर कुप्रथा के शिकार हो गये हैं। बेटी जन्मकाल से ही परिवार के लिए अभिशाप समझी जाती है। बेटे का बाप मुँह मांगा दाम लेकर बेटे को बेचता हुआ देखा जा रहा है। दहेज ने इंसान को इंसान नहीं रहने दिया है। बेटा बिक्री के लिए बाजार का कोई उपकरण हो गया है तो बेटी निरीह 'गौ' की तरह किसी भी खूंटे से बांध दिया जानेवाला मूक पशु बन गई है। जगदीश चन्द्र माथुर का एक एकांकी नाटक है 'रीढ़ की हड्डी'। इस एकांकी का आधार बिन्दु यह दहेज प्रसंग ही है। इसमें उमा नाम की लड़की दहेज लेने वाले बाप और लड़के दोनों को शादी के लिए नकार देती है। एकांकी का शीर्षक 'रीढ़ की हड्डी' यह प्रमाणित करता है कि दहेज की माँग करनेवाले पिता और पुत्र दोनों ही बेजान किस्म के आदमी, केंचुए की भांति होते हैं, जिनके जीवन में, समाज में अपने पैरों पर खड़े होने की शक्ति नहीं होती। इनकी रीढ़ की हड्डी अत्यंत कमजोर और टेढ़ी होती है जिससे अपने दम पर ये खड़े भी नहीं हो सकते। उमा से विवाह के लिए आनेवाला लड़का शंकर का उठना-बैठना और उसका व्यवहार ही ऐसा है जिससे लगता है कि वह लड़का



बेजान-सा है। उमा एक महाचण्डी की तरह ऐसा कठोर, उग्र और प्रतिरोधक व्यवहार करती है कि बाप-बेटे दोनों को भागना पड़ता है। उमा की तरह की लड़कियों का ही आज प्रयोजन है, जो दहेज-दानव के लिए महाचण्डी बन जाए और इस दहेज-महिषासुर का वध कर दे।

समाज में फैली कुप्रथाओं के चलते दहेज का स्वरूप दिन प्रतिदिन बिगड़ता जा रहा है। भारतीय समाज में चूँकि विवाह जाति के आधार पर होता है, इसीलिए समान जातिवाले कन्या पक्ष की मजबूरी का नाजायज लाभ उठाते और शोषण करते हैं। चूँकि अन्तर्जातीय विवाह को आज भी छिट-पुट सामाजिक मान्यता ही मिली हुई है, वह भी तब, जब वर या कन्या दोनों किसी न किसी प्रकार परिवार और समाज की मान्यताओं को अघोषित कर अपना विवाह स्वत: कर लेते हैं। ऐसे विवाह भले ही कुछ देर के लिए परिवार अथवा समाज की बेचैनी का कारण होते हैं, लेकिन कुछ ही दिनों के बाद जैसे समुद्र में उठा हुआ ज्वार शान्त हो जाता है, वैसे ही यह विवाह भी धीरे-धीरे स्वीकृत हो जाता है। कहा गया है, **''दर्द का हद से गुजरना दवा होता है''** यही उक्ति चरितार्थ होती है। ऐसे विवाह करने वाले युवकों और युवतियों को धन्यवाद है। वे साधुवाद के पात्र हैं, जो समाज में फैली कुप्रथा के आगे सीना तानकर खड़े हो जाते हैं। दहेज दानव के मुँह पर यह एक जन्नाटेदार तमाचा है। अन्तर्जातीय विवाह को यदि सार्वजनिक छूट मिल जाए तो यह एक अच्छा उपचार होगा दहेज की बीमारी को दूर करने का। एक ही जाति के अन्दर विवाह करने की सीमा को लेकर ही दहेज और तिलक आदि कुप्रथाओं को प्रोत्साहन मिलता है।

अब समय आ गया है, जब महिलाओं को इस कुप्रथा के विरुद्ध जेहाद छेड़ना है। जाति की सीमा को लाँघकर महिलाओं को

भी अन्तर्जातीय विवाह के लिए आगे आना है और उन्हें समाज को जागृत करना है। विवाह में वर और वधू की इच्छा का कोई महत्व ही नहीं होता। माता-पिता ही अपने इच्छानुसार वर-वधू का चयन कर लेते हैं। विवाह जैसे महत्त्वपूर्ण विषय पर भी युवक-युवतियों को स्वतंत्रता नहीं मिलती जिसका परिणाम यह होता है कि आज अक्सर बेमेल विवाह होते हैं। माँ-बाप दहेज से बचने के लिए अपनी कन्याओं की शादी बूढ़े, रोगी और अयोग्य व्यक्तियों से कर देते हैं। यहाँ तक भी देखा गया है कि दहेज की रकम से बचने के लिए माँ-बाप अपनी कन्या की शादी ऐसे पुरुष से भी कर देते हैं जिसकी पहली पत्नी जीवित रहती है। महिला समाज के लिए यह एक बहुत बड़ी विडम्बना है जिससे महिलाओं को ही संघर्ष करना होगा। अंग्रेजी की कहावत है–''Fight yourself alone'' अर्थात् 'अपनी लड़ाई आप ही लड़ो'। बात सही भी है, दूसरे लोग एक सीमा तक ही आपका साथ दे सकते हैं और जी-जान लगाकर तो वही लड़ सकता है जिसका अपना काम है। आज तो बहुत कुछ समाज सुधरा और बदला है, नहीं तो आज से पचास वर्ष पहले बेटियों को बेच भी दिया जाता था। जिनकी आर्थिक स्थिति खराब रहती थी वे लोग अपनी बेटियों का सौदा करने से भी नहीं हिचकिचाते थे।

दहेज-जैसी सामाजिक कुरीति को दूर करने के लिए महिलाओं को ही आगे आना होगा और इसका खुलकर विरोध करना होगा। दहेज एक ऐसी आग है, जिसकी लपट कभी बुझती ही नहीं। इसके कारण न तो कन्या के घरवाले सुख-शान्ति से रह पाते हैं और न ही उसकी ससुराल वाले। इससे पारिवारिक संघर्ष में वृद्धि हुई है। कम दहेज पाने के कारण लड़की की ससुराल वाले गुस्से में रहते हैं और लड़की दहेज-उत्पीड़न का शिकार होती है। आये दिन अखबारों में हेडिंग बने रहते हैं कि 'मोटर साइकिल न पाने के कारण कन्या को



जलाया गया' या फिर 'माँगी हुई रकम न मिलने के कारण ससुराल वालों से तंग आकर लड़की ने जहर खा लिया अथवा फाँसी लगा ली।'' ऐसा काम अनपढ़, अशिक्षित और असंस्कृत लोग करें तो उतना आश्चर्य नहीं। उल्टी बात यह है कि पढ़े-लिखे लोग, अच्छे-भले परिवार के लोग अपने आईएएस, डाक्टर, इंजीनियर अथवा कॉरपोरेट फिल्ड में ही लाखों का पैकेज कमानेवाले बेटों के लिए दहेज में लाखों-करोड़ों की राशि माँगते हैं।

कम दहेज पाने से लड़की के ससुराल वाले तो गुस्से में रहते ही हैं, दूसरी तरफ खेती-बारी अथवा मकान इत्यादि बेचकर दहेज का जुगाड़ करने वाले पिता और भाई भी चैन से नहीं रहते। अन्ततः पिता के प्रति भाइयों के मन में मलाल होने लगता है कि बेटी के लिए उन्होंने सब कुछ न्योछावर कर दिया। इस तरह घर की सुख-शान्ति छीन जाती है। अधिकतर माँ-बाप अपनी कन्या का विवाह बिना शिक्षा दिलाये, कम उम्र में ही कर देना चाहते हैं क्योंकि अधिक पढ़ाने-लिखाने से उन्हीं के समान शिक्षित और योग्य वर खोजना होगा जिससे दहेज की रकम भी बहुत बढ़ जायेगी। इसका परिणाम यह होता है कि बालिकाओं का एक बहुत बड़ा भाग अशिक्षित ही रह जाता है जिसका समाज की प्रगति पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

यह बात सही है कि कन्याओं के साथ होने वाले अत्याचार को देखकर सरकार ने दहेज विरोधी कानून बनाया है। कानून के तहत 'दहेज लेना और दहेज देना' दोनों ही अपराध माना गया है। पुलिस को इस सम्बन्ध में काफी अधिकार दिये जा चुके हैं। दहेज लेने और देने वाले कई लोग पकड़े भी गये हैं। उनपर मुकदमे भी चलाये गये हैं और ऐसे कई अपराधी जेल की सजा भी भुगत रहे हैं। अंग्रेजी में कहा गया है–''Shamelessness has thousand advantages''

अर्थात् निर्लज्जता के अनेक लाभ हैं। निर्लज व्यक्तियों के लिए कोई कानून नहीं है। ऐसे लोग कानून को भी अँगूठा दिखलाने में माहिर हैं। ये लोग कम्बल ओढ़कर घी पी लेते हैं। कानून बन जाने से ही किसी कुप्रथा का अंत नहीं हो जाता।

जब तक हमारे सोच में, हमारे चिन्तन में बदलाव नहीं होगा, जब तक हम त्याग और उदारता का महत्त्व नहीं समझेंगे, जब तक कन्या और वर पक्ष के लोग स्वयं संकल्प नहीं लेंगे कि 'दहेज लेना और दहेज देना' सामाजिक अपराध है, तब तक दहेज रूपी यह दानव मरने वाला नहीं है। कानून आप में डर भले ही पैदा कर दे, आपका हृदय नहीं बदल सकता। हृदय परिवर्तन के लिए स्वविवेक आवश्यक है। दहेज प्रथा की क्रूरता को देखते हुए महात्मा गांधी का कथन है–''दहेज की पातकी प्रथा के खिलाफ जबर्दस्त लोकमत बनाया जाना चाहिए और जो नवयुवक इस प्रकार गलत ढंग से लिये गये धन से अपने हाथों को अपवित्र करें, उन्हें जाति से बहिष्कृत कर देना चाहिए.... इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि यह एक हृदयहीन बुराई है।''

आज के बदलते परिवेश में दहेज-प्रथा के उन्मूलन के लिए देश के युवावर्ग में जागृति आना तो आवश्यक है ही, इसके लिए युवतियों को भी आगे आना होगा। युवतियाँ आगे आ भी रही हैं। बहुत सी कन्यायें अपने अनुरूप वर न देखकर अथवा दहेज के लिए राक्षसी मांग को देखकर विवाह-मंडप पर से उठ जा रही हैं और घोर विरोध कर रही हैं। इसमें कोई शक नहीं कि पुरानी पद्धतियाँ झड़ रही हैं और दहेज दानव के दाँत टूट रहे हैं। अन्तर्जातीय विवाह को प्रोत्साहन मिल रहा है। दहेज लेने-देने की खबर सुनकर पत्रकार और मानवाधिकार के लोग भी वहाँ पहुँचकर अपनी आवाज उठा रहे हैं। सामूहिक विवाह को भी प्रोत्साहन दिया जा रहा है। अनेक संस्थाओं



के माध्यम से भी इस दहेज-दैत्य को मारने का बीड़ा उठाया गया है। जन-जागरण के कारण दहेज-विरोधी भावनायें जनता में उत्पन्न होती जा रही हैं। देश के युवक एवं युवतियों ने विवाह में 'दहेज न लेने और दहेज न देने' के लिए कसमें खाई हैं। महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में अध्ययनरत छात्र-छात्राओं ने 'दहेज न लेने और दहेज न देने की शपथ ली है। इन सारी चीजों का कारगर प्रभाव सर्वत्र देखने को मिल रहा है।

अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष में भी दहेज-प्रथा के विरुद्ध कठोर कदम उठाये गये हैं। आर्य-समाज जैसी अनेक संस्थाओं ने भी इस दिशा में अमूल्य योगदान किया है। ये सारे तथ्य इस बात को सिद्ध करते हैं कि अब दहेज-दानव के पाँव अधिक नहीं बढ़ पायेंगे। नौकरी पाने के लिए भेजे जाने वाले आवेदन पत्रों में भी 'दहेज नहीं देने और नहीं लेने' की शर्त्त अंकित रहती है। अनेक साहित्यकारों एवं फिल्म निर्माताओं ने भी दहेज प्रथा की बुराइयों को दर्शाया है। रेडियो, दूरदर्शन, समाचारपत्र आदि अन्य संचार माध्यमों से भी इस कुप्रथा पर आघात किया गया है जिसका असर सूर्योदय की तरह सर्वत्र साफ-साफ देखा जा रहा है।

निश्चित रूप से अब वह दिन दूर नहीं, जब दहेज का यह दानव हमारी बुद्धि और हमारी उदारता की महाचण्डी के त्रिशूल से घायल होकर धराशायी हो जायेगा।

❐❐❐

# बाल-विकास : नारी का त्याग

समाज शास्त्र और नागरिक शास्त्र की उक्ति है–''बच्चा नागरिकता का पहला पाठ अपनी माँ की गोद में सीखता है।'' वर्ड्सवर्थ की भी प्रसिद्ध पंक्ति है–''Child is father of the man.'' आज का बालक या बालिका कल के उत्तरदायी नागरिक हैं। अत: देश की स्वतंत्रता, अखण्डता, एकता और विकास के लिए देश के बच्चों को अधिक से अधिक सृजनशील बनाना हम सबका एक प्रमुख दायित्व है। यदि बालक की सृजनात्मक शक्ति का सही निर्देशन माता के द्वारा नहीं होता है तो आगे चलकर देश की नैया गारत होनी ही होनी है। बच्चों में सृजनात्मकता की भावना लाने में माँ की भूमिका सर्वोपरि है। पुराणों में 'मदालसा' नाम की स्त्री का नाम आया है जो अपने पुत्र को पालने में झुलाकर यही लोरी सुनाती थी–''**शुद्धोऽसि, बुद्धोऽसि, निरंजनोऽसि, संसार माया परिवर्जतोऽसि।**''

कहने की बात नहीं है कि 'मदालसा' एक ऐसी माँ थी जो शुरू से ही अपने राजकुमार को संसार के लिए शुद्ध, प्रबुद्ध, निर्मोह और न्यायी बनाना चाहती थी। माँ की देख-रेख में ही बालक विकसित होता है। माँ से ही प्रेरणा पाता है और आगे चलकर देश का कर्णधार बनता है। जननी को स्वर्ग से भी श्रेष्ठ कहा गया है। इसका मतलब यही है कि माँ में ईश्वर का रूप झलकता है। बाईबिल की कहावत भी है कि चूँकि ईश्वर सर्वत्र नहीं रह सकता, इसीलिए उसने माँ की सृष्टि की। त्याग, प्रेम, ममता, आदि को 'न्योछावर' करने की भावना तथा सदा बच्चों के हित की 'कामना' माँ का दर्जा ईश्वर से भी ऊपर ले जाता है।

बच्चे बचपन से ही अपनी माँ की छवि अपने में देखने लगते हैं। माँ तो केवल बालक में जीवन की रेखायें खींच देती है। यदि ये रेखायें अटपटी और जटिल हो गईं तो बालक या बालिका उन रेखाओं में अपने चरित्र की तूलिका से रंग भरकर साकार नहीं कर सकते। जन्म के समय बच्चा हर तरह से असहाय होता है। माँ ही अपना सारा सुख छोड़कर उसके लालन-पालन में जुट जाती है। माँ बच्चे को अपना दूध पिलाकर यदि उसके शरीर को पुष्ट बनाती है तो उसे तरह-तरह के महापुरुषों की कथायें सुनाकर, वीर पुरुषों के सम्बन्ध में लोरियाँ सुनाकर, साधु सन्तों की जीवनी सुनाकर उसका चरित्र निर्माण भी करती है। माता जीजाबाई ने बचपन में शिवाजी को रामकृष्ण आदि महापुरुषों की कहानियाँ सुना-सुनाकर इतना साहसी, सत्कर्मी और गुरुभक्त बना दिया कि शिवाजी से जब उनके गुरु ने उनकी परीक्षा लेने के लिए अपने माथे में दर्द का बहाना बनाकर सिंहनी का दूध लाने को कहा, तो शिवाजी अपनी बाल्यावस्था में ही सिंहनी की माँद खोजने के लिए चल पड़े। सिंहनी की माँद में शिवाजी उतर गये। वह अपने बच्चों को उस समय दूध पिला रही थी। शिवाजी ने बच्चों के साथ खेलते हुए, सहलाते हुए अपने पात्र में सिंहनी का दूध दूह लिया। दुष्यन्त पुत्र 'भरत', जिनके नाम पर हमारे देश का नाम 'भारतवर्ष' है, के बारे में हमने सुना है कि वे

बचपन में सिंहों का मुँह खोलकर उनके दांत गिनते और उनके साथ खेलते थे। उनकी माँ शकुन्तला ने उन्हें ऐसी ही शिक्षा दी थी। भगवती सीता के त्याग और लालन-पालन को कौन नहीं जानता ? जिन्होंने लव-कुश को ऐसा बहादुर बना दिया था कि उन दोनों पुत्रों ने सर्वपराक्रमी अपने पिता राम से भी टक्कर ली। महावीर हनुमान को भी मूर्च्छित कर दिया। ये सारे उदाहरण सिद्ध करते हैं कि बालक-बालिकाओं के विकास में माता की भूमिका अनन्य है।

आज इक्कीसवीं सदी में हमारी माताओं को तरह-तरह के हाईटेक (Hightech) कार्यों से ही अवकाश नहीं मिलता कि वे अपने बच्चों को लोरियाँ या गाथाएँ सुना सकें। आज की माताओं में गिनी-चुनी ही ऐसी होंगी जो लोरियाँ और गाथाएँ जानती भी होंगी। मेरे यह कहने का अर्थ ऐसी माताओं की आलोचना नहीं है। मैं यह कहना चाहती हूँ कि किसी भी युग में बच्चों का समुचित शारीरिक और मानसिक विकास अनिवार्य है और इसमें माता की भूमिका अहम् है। इसे कहीं से भी इंकार नहीं किया जा सकता।

कहा जाता है कि बालक एक सप्ताह में ही अपनी माँ को पहचानने लगता है। अपनी माँ की प्रत्येक गतिविधि को वह सूक्ष्मतापूर्वक देखता रहता है और फिर अपनी माँ का असीम प्यार-दुलार पाकर वह विकास करता है। माँ के बिना बच्चे का विकास होना संभव नहीं है। एक माँ कठिन परिस्थितियों में भी अपने बच्चे के कल्याण के लिए 'जितिया' तथा 'छठ' जैसे कठिन व्रत भी करती है, जिसका प्रभाव बालक पर तो पड़ता ही है। साथ ही बालक अपने हृदय में इस भावना को सँजो कर रखता है कि उसकी माँ उसके विकास और कल्याण के लिए सब कुछ करने के लिए हमेशा तैयार रहती है।

आधुनिक से आधुनिक हिन्दू महिलाएँ 'जितिया' एवं 'छठ' व्रत करती ही हैं। इसका मतलब है कि इस 'हाईटेक एज' में भी



उनके भीतर अपने बच्चों की कल्याण की कामना तो है ही। कितनी भी व्यस्तता हो, वे अपने चिन्तन को दबा नहीं सकतीं। माँ की भावनाएँ अपनी आद्य प्रवृत्तियों में जोर मारेगी ही। बालक या बालिका अपनी माँ की गोद में, माँ की देख-रेख में, अपने चारों तरफ फैले परिवेश से अपना विकास करता है। बच्चे के निर्माण में उसके परिवेश का विशेष हाथ होता है। उसके विकास के लिए आस-पास के वातावरण का पूर्णतया स्वस्थ होना अत्यन्त आवश्यक है। पूर्ण विश्वास के साथ भविष्य का सामना करने के लिए स्वस्थ जीवन के विकास में पौष्टिक भोजन, स्वच्छ शुद्ध जल, हवा और पर्याप्त मनोवैज्ञानिक तथा भावात्मक रूप से विशुद्ध परिवेश का होना लाजिमी है। आज भागमभाग का दौर है। इतना ही नहीं अन्न, जल, वायु, यहाँ तक कि मिट्टी, इनमें से कोई भी शुद्ध नहीं रह गया है। सबकुछ में खाद मिलाकर हमने इन्हें जहरीला बना दिया है। ध्वनि-प्रदूषण, वायु-प्रदूषण और-तो-और आकाश को भी हमने प्रदूषित कर दिया है। ऐसी स्थिति में माताओं का यह दायित्व बनता है कि ये बालक-बालिकाओं को स्वस्थ और स्वतंत्र रखते हुए उनके स्वच्छ चरित्र का निर्माण करें।

आज भी अपने देश में शिक्षा का सर्वथा अभाव है। महिलायें शिक्षा के क्षेत्र में बढ़ तो रही हैं, फिर भी सभी माताओं की स्थिति संतोषजनक नहीं है। इसका प्रभाव बच्चों के विकास पर भी पड़ता है। एक पढ़ी-लिखी माँ अपने बच्चों पर काफी अच्छा प्रभाव डाल सकती है लेकिन यदि वह स्वयं ही अशिक्षित है तो बच्चे का भविष्य अन्धकारमय ही होगा। यद्यपि इसके अपवाद भी होते हैं। आज भी हमारे प्रान्त में ऐसे अनेक गाँव मिल जायेंगे, जहाँ शिक्षा की मशाल का प्रकाश पहुँचा ही नहीं है। यह बात भी है कि उच्च शिक्षा प्राप्त महिलाओं के बेटे-बेटियों का विकास द्रुत गति से हो रहा है और

ऐसी महिलायें अपने बच्चों को देश का सफल नागरिक बनाने में समर्थ हो रही हैं। आज की माताओं को रूढ़िवादिता तथा अन्धविश्वासों से दूर रहना होगा। उन्हें अपने में इतना साहस अवश्य संजोना होगा कि वे समाज के विरुद्ध लड़ सकें। अगर सामाजिक रूप से माताएँ कुंठित होंगी तो उनके बच्चों पर इसका बुरा असर पड़ेगा और बच्चे कायर हो जायेंगे। जीवन में वे किसी भी आपत्ति या विपत्ति का सामना नहीं कर सकेंगे। उनके सर्वांगीन विकास में बाधा उत्पन्न हो जायेगी। वे पीछे रह जायेंगे।

महिलाओं को पर्दा प्रथा, दहेज प्रथा एवं अनेक धार्मिक अन्ध विश्वासों से ऊपर उठना होगा और इन कुरीतियों से मुक्त होकर अपने बालक अथवा बालिका की शिक्षा-दीक्षा और संस्कार-सम्पन्नता के लिए उन्हें संघर्ष करना पड़ेगा। बालक अथवा बालिका को स्वच्छंद वातावरण में आगे बढ़ने के लिए माँ के प्यार और संबल को भी कहीं से दबाव में नहीं होना चाहिए। बच्चों के विकास के साथ-साथ समाज का भी कल्याण होता है। आज की माताएँ हीन भावना तथा कुंठा का शिकार भी हैं। जब माताएँ ही इन हीन भावनाओं से ग्रस्त रहेंगी, अपने को कमजोर समझेंगी तो उनकी सन्तान का विकास असंभव है। माताओं में व्याप्त कुंठा और हीन भावनाओं को हटाने की आवश्यकता है। उन्हें उत्साहित एवं प्रेरित करने की आवश्यकता है कि वे जो कुछ भी कर रही हैं, ठीक कर रही हैं। इससे बच्चों के व्यक्तित्व का उन्मुक्त विकास होगा। समाज आगे बढ़ेगा तथा सम्पूर्ण देश का कल्याण होगा।

यदि माँ की इच्छा-शक्ति बलवती हो तो उनकी संतान भी बलवती इच्छाशक्ति वाली होगी। कृष्ण की बहन और अर्जुन की पत्नी सुभद्रा की यह इच्छाशक्ति ही थी कि अभिमन्यु ने गर्भ में ही चक्रव्यूह की कथा जान ली। इस तरह बच्चों में इच्छा-शक्ति का



सृजन माँ से ही होता है। माँ के गर्भ से ही होता है। वह माँ ही है, जो बालक में आगे बढ़ने, विघ्न बाधाओं से जूझते हुए कार्यों को साधने, संकटों में धैर्य रखने, उन्नति में क्षमा करने, सभा में वाक् पटु होने और शत्रुओं के दाँत खट्टे करने की इच्छा-शक्ति को स्फुरित करती है। तब बच्चा स्वयं ही अपना भाग्य विधाता बन जाता है। उसकी उन्नति की राह अपने आप खुल जाती है। जिस माँ में अपने बालक की इच्छा-शक्ति को जगाने का माद्दा नहीं होता वह बालक जीवन में कभी सफल नहीं होता। जहाँ चाह है, वहाँ राह भी मिल ही जाती है और सही बात यह है कि मानव मात्र की सफलता का सारा इतिहास उसकी चाहत की कहानियों से ही भरा हुआ है।

यह तथ्य है कि आज की माताएँ जागृत हो रही हैं। महिलाओं के उत्थान के लिए अनेक महिला संगठनों का गठन हुआ है जिसका सम्बल पाकर महिलायें पुरुषों की तरह ही हर कार्य में, हर क्षेत्र में समर्थ और सक्षम हो रही हैं।

देश और राष्ट्र के विकास में बालक और बालिकाओं दोनों का एक साथ बढ़ना, सहयुक्त होना अत्यंत आवश्यक है। सृष्टि के निर्माण में पुरुष और नारी दोनों की समान सहभागिता रही है। अत: समाज के विकास के लिए इन दोनों का सन्तुलित विकास अत्यंत आवश्यक है। आज हमें इस तथ्य के लिए नारियों का कृतज्ञ होना चाहिए कि ये पुरुष के साथ हर क्षेत्र में सहयोगिता ही नहीं प्रतियोगिता भी कर रही हैं और बालक-बालिकाओं के विकास के लिए हर संभव प्रयास कर रही हैं। समाज का नव निर्माण कर रही हैं।

जन्मकाल से किसी-किसी भारतीय परिवार में बालक-बालिकाओं के लालन-पालन, खान-पान, रहन-सहन में भेद-भाव देखने को मिलता है। बालकों के ऊपर लोग अधिक ध्यान

देते हैं जबकि बालिकाओं की तरफ कम। इसके पीछे प्रायः यह धारणा परिवार की या बड़े-बुजुर्गों की है कि बेटा तो आगे चलकर कमायेगा, खटेगा और घर चलायेगा, परिवार की गाड़ी को आगे बढ़ायेगा और लड़की तो दूसरे के यहाँ चली जायेगी। इसलिए इस पर इतना ध्यान देना क्या ?

यह बिल्कुल ही फिजूल एवं गलत बात है। बालक और बालिका समाज की या परिवार की गाड़ी को चलाने वाले दो पहिये हैं। अतः जो माताएँ इनके पालन-पोषण पर उचित ध्यान देती हैं, उनका समुचित विकास करतीं एवं करातीं हैं, उन्हीं का त्याग सार्थक है। देश के विकास एवं राष्ट्र के निर्माण के लिए बालक-बालिका, भाई-बहन दोनों का योगदान आवश्यक है। गोपाल सिंह नेपाली ने अपनी कविता 'भाई-बहन' में लिखा है–**''आज न कोई राधा रानी वृन्दावन बंशी वाला/तू आंगन की ज्योति बहन री मैं घर का पहरेवाला।''**

समाज को कुंठा, ग्लानि और एकपक्षीय होने से बचाने के लिये हमें इस पहलू को लेकर विचार करना होगा और गोपाल सिंह नेपाली की पंक्तियों पर ध्यान देना होगा कि बालक अगर मैदान का सिपाही है तो बालिका घर को चमकाने, गमकाने और सजानेवाली देवी है जिसके बिना घर की रौनक ही समाप्त हो जायेगी। यह खुशी की बात है कि आज का शिक्षित परिवार, समाज इस सीमित दायरे से निकल चुका है और सभी शिक्षित परिवारों में से बालक-बालिकाओं के अंतर को हटाया जा रहा है और यह महसूस किया जा रहा है कि बालिकाओं के प्रति भेद-भाव करना उनके साथ घोर अन्याय है। बालिकाओं के विकास में उनमें फैली अशिक्षा सबसे बड़ी बाधा है। खासकर ग्रामीण क्षेत्रों में बालिकाओं की शिक्षा के सम्बन्ध में कोई ध्यान नहीं दिया जाता था। यह खुशी की बात है कि सरकार द्वारा



आज मुख्यमंत्री कन्या सुरक्षा योजना के अन्तर्गत कन्या भ्रूण हत्या को रोकने, कन्या के जन्म को प्रोत्साहित करने, लिंग अनुपात में वृद्धि लाने तथा जन्म निबंधन को प्रोत्साहित करने जैसे कार्य कराये जा रहे हैं। इस योजना के तहत कन्या को जन्म के समय रु. 2000.00 (दो हजार) की राशि प्रति कन्या एक मुश्त अनुदान के रूप में यूटीआई म्यूच्वल फन्ड चिल्ड्रेन कैरियर मैरेज प्लान में कन्या के नाम से निवेश कर प्रमाण पत्र उपलब्ध कराया जा रहा है। साथ ही मुख्यमंत्री कन्या संवासिन विवाह अनुदान योजना के तहत सरकार द्वारा संचालित गृहों में रहने वाली, अनाथ लड़कियों को विवाह के अवसर पर 21 हजार रुपये देने का प्रावधान किया गया है।

छह वर्ष से कम आयु के बच्चों के पोषण और स्वास्थ्य की स्थिति को सुधारना, मृत्यु दर, रुग्नता, कुपोषण और बीच में स्कूल छोड़ने वाले बच्चों की संख्या में कमी लाना सरकार का उद्देश्य है। इतना ही नहीं बाल विकास जिसमें निश्चित रूप से बालक और बालिका दोनों ही शामिल हैं, के लिए उचित स्वास्थ्य और पोषण सम्बन्धी शिक्षा के माध्यम से माताओं को इस योग्य बनाना भी उद्देश्य है–कि वे बच्चों के सामान्य स्वास्थ्य और पोषण-आवश्यकताओं की देखभाल करें। बालक-बालिकाओं के स्वास्थ्य वर्द्धन और शिक्षण के लिए आँगन बाड़ी केन्द्र पर महिला-मंडल का गठन भी किया गया है ताकि 'आशा' कार्यकर्त्ता माताओं को बच्चे के स्वास्थ्य एवं उसकी कार्यक्षमता धीरे-धीरे बढ़ाने के लिए प्रशिक्षित करें।

सरकार ने प्रथमतः मिडिल स्कूल और हाई स्कूल में पढ़ने वाली लड़कियों के लिए साईकिल योजना चलाई थी ताकि जिनके गाँव से विद्यालय दूर है, वहाँ बालिकायें सुविधा से पहुँच सकें। अब तो यह योजना बालकों के लिए भी सुलभ हो गई है। बिहार में मुख्यमंत्री के द्वारा हर बच्चे को चाहे बालक हो या बालिका स्कूली

शिक्षा से जोड़ने के लिए शिक्षा का अधिकार कानून को लागू किया जा रहा है। इसके तहत वर्ष 2011-2012 से निजी (प्राइवेट) विद्यालयों में 25 फीसदी सीटों पर कमजोर वर्ग के गरीब बच्चों का नामांकन करना है। इन बच्चों की स्कूल फीस, इनकी पोशाक एवं इनकी किताबों का खर्च सरकार वहन करेगी। यह कानून राज्य में सभी निजी विद्यालयों के लिए है। इससे अब निर्धन बच्चों को भी अच्छे निजी विद्यालयों में पढ़ने और अपनी प्रतिभा निखारने का मौका मिलेगा।

कहने का मतलब यह है कि सरकार की तरफ से बालक-बालिका के शिक्षण के लिए अनेक प्रकार के कारगर कदम उठाए गये हैं और उठाए जा रहे हैं। इसके बावजूद अगर माताएँ इसका लाभ नहीं उठाती हैं तो वही कहावत चरितार्थ होगी **'जंगल में मोर नाचा किसने देखा'**। आज हमें यह भी देखने को मिलता है कि बालिकायें असुरक्षा की भाावना से ग्रस्त हैं। लड़कों के हँसी-ठट्ठे और व्यंग्य से वे परेशान हो जाती हैं। वे घर से बाहर अकेले निकलने में भी घबराती हैं। इसके लिए हमारा समाज दोषी है। हमें ऐसे समाज को बदलना होगा और एक ऐसे समाज का सृजन करना होगा जिसमें बालिकाएँ बालकों के साथ अपने को मुक्त (फ्री) अनुभव कर सकें।

यह बात जरूर है कि हमारे यहाँ सह शिक्षा प्रायः आजादी के बाद से ही आरंभ कर दी गई। कन्या पाठशालाओं और कन्या महाविद्यालयों के बावजूद कन्यायें ऐसे विद्यालयों एवं महाविद्यालयों में जाती रहीं, नामांकन कराती रहीं और पढ़ाई करती रहीं। लड़कियों में शिक्षा के प्रति आकर्षण बढ़ने से हो, समय की गति के कारण हो, सरकार और समाज के प्रोत्साहन के कारण हो लेकिन आज ऐसी स्थिति है कि कन्येतर पाठशालाओं और महाविद्यालयों में भी लड़कियाँ



धड़ल्ले से नामांकन करा रही हैं और पढ़ रही हैं। यह हमारे समाज का दोष है कि सारी चीजों के बावजूद लड़कियाँ अपने को सुरक्षित महसूस नहीं करतीं। बदलाव जरूर आया है, लेकिन अभी भी हमें बालिकाओं को बहुत सारे मौलिक अधिकारों के प्रति सतर्क एवं जागरूक करने की आवश्यकता है।

बालिकाओं में विकास हो, इसके लिए यह सबसे जरूरी है कि उनके अभिभावक उनमें आत्मनिर्भरता एवं आत्मविश्वास की वृद्धि करें ताकि वे अपने को अबला नहीं समझें। इक्कीसवीं सदी में नारी-सशक्तीकरण जैसे शब्द आये तो हैं लेकिन 'नारे' से अधिक 'कार्य' की आवश्यकता है। 'यूनिसेफ तथा दक्षेश' के सहयोग से चलाया गया 'बालिकावर्ष' हाल ही में समाप्त हुआ है। भारत में भी 'बालिकावर्ष' के उपलक्ष्य में बालिकाओं के सर्वांगीण विकास के लिए कुछ विशेष योजनाएँ बनाई गई हैं किन्तु इन सारी बातों से अलग बात यह है कि माता और पिता, बालक-बालिका के विकास में किस हद तक रुचि और तत्परता दिखा रहे हैं। ''Charity begins at home'' के अनुसार हमें कोई भी काम सबसे पहले अपने नजदीकी स्तर से ही शुरू करना होगा।

❐❐❐

# आजादी की लड़ाई और नारी शक्ति

हमारे शास्त्रों में और इतिहास में भी महिलाओं के त्याग, आदर्श और बलिदान की गाथाएँ कम नहीं हैं। यह अधिकांश में हमारा भ्रम है कि हमारी सभ्यता अथवा संस्कृति में महिलायें उत्पीड़न का शिकार रही हैं। कुछ छिटपुट सम्प्रदायों और पुस्तकों को छोड़ दिया जाए तो सर्वत्र नारी की महनीयता के ही श्लोक और गाथाएँ मिलती हैं। हमारी सभ्यता के प्रारंभ से ही चाहे घर हो अथवा बाहर, नारी का हर क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। प्रारंभ से ही नारी पुरुषों के कन्धे-से-कन्धे मिलाकर हर क्षेत्र में उसका सहयोग करती आ रही है। युद्ध हो अथवा शान्ति, विद्रोह हो अथवा त्याग, नारियाँ समुचित रूपसे अपना योगदान करने में समर्थ रही हैं। भारतीय इतिहास में अनेक ऐसी विदुषी और वीर नारियों का वर्णन है, जिन्होंने भारत की राष्ट्रीयता, एकता और अखण्डता को बढ़ाने में अपना भरपूर योगदान किया है। महाराज दशरथ के साथ कैकेयी का युद्ध क्षेत्र में सहयेाग रामायण की एक सुविख्यात घटना है।

मध्ययुग में तो नारियेां की वीरता के अनेक उदाहरण प्रस्तुत हैं। पद्मिनी, रानी दुर्गावती, चाँदबीबी, अहल्यावाई और झाँसी की रानी के नाम को कौन नहीं जानता ? आज नारियाँ हमारे देश और राष्ट्र की धुरी हैं। देश-प्रदेश के विकास में नारियों को भुलाया नहीं जा सकता। इतिहास इस बात का साक्षी रहा है कि भारत को परतंत्रता की बेड़ी से मुक्त कराने में भारतीय महिलायें भी पीछे नहीं रही हैं। सदियों से आजादी के लिए जो लड़ाई लड़ी गई, उसमें केवल पुरुषों का ही योगदान नहीं था बल्कि महिलाओं ने भी उसमें खुलकर साथ दिया। देश की उन महान महिलाओं की भूमिका को कभी भुलाया नहीं जा सकता, जिन्होंने हमारे भव्य भारतवर्ष की गरिमा और गौरव के लिए, भारतवर्ष रूपी विशाल भवन के निर्माण के लिए, मील के पत्थर का काम किया।

1857 के स्वतंत्रता-संग्राम में महिलाओं ने अपने प्राणों की बाजी लगा दी और स्वातंत्र्य संग्राम की भेरी घोष को पूर्ण स्वर दिया। झाँसी की रानी लक्ष्मी बाई और उनकी सहेलियों के नाम इस संदर्भ में विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। लक्ष्मी बाई ने पुरुष का बाना धारण कर अंग्रेजों से घमासान युद्ध किया और राष्ट्र-स्वाभिमान-संघर्ष में अपनी आहुति दी। कादम्बिनी गाँगुली ऐसी पहली महिला थीं जिन्होंने अधिवेशन में बेझिझक भाषण दिया और भारतीय महिलाओं को स्वतंत्रता-संग्राम में आगे बढ़ने के लिए प्रेरित किया। श्रीमती नीलिमा सेन गुप्त ने भी आजादी के आन्दोलन में पूर्ण रूप से भाग लिया। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के 'अंग्रेजों भारत छोड़ो' आन्दोलन में 'करो या मरो' के नारे के साथ महिलायें भी पूरी तत्परता से आन्दोलन में आगे बढ़ीं। कवयित्री सुभद्रा कुमारी चौहान ने अपनी कविता **'खूब लड़ी मर्दानी, वह तो झाँसी वाली रानी थी'** लिखकर स्त्री जाति को यह प्रेरणा दी कि वह साहस और शौर्य में पुरुषों से कम नहीं है।

भारत कोकिला सरोजिनी नायडू का नाम इसीलिए चिरपरिचित है कि गांधी जी के साथ भी अंग्रेजों के विरुद्ध उन्होंने राष्ट्रीय आन्दोलन में नेतृत्व किया। जेल भी गईं। वे ऐसी महिमामयी नारी थीं, जिन्होंने अपनी विलक्षण प्रतिभा, वक्तृत्व शक्ति, राजनीतिक ज्ञान और काव्य कुशलता से न केवल देश में, बल्कि देश के बाहर भी अपना विशिष्ट स्थान बनाया। उन्हें एक नारी-योद्धा के रूप में भारतीय महिला-जागरण का मूर्त्तमान प्रतीक माना जा सकता है। भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन में इनकी सबसे बड़ी सेवा साम्प्रदायिक एकता की स्थापना थी। उन्होंने कानपुर में कांग्रेस अध्यक्ष पद से भाषण करते हुए अपना मुख्य कार्य भारत के सब धर्मों और सम्प्रदायों में मेल मिलाप बनाये रखना बतलाया। उनके यहाँ प्रायः मुसलमान नौकर काम करते थे। इसलिए उनकी धार्मिक संकीर्णता स्वभावतः दूर हो गई थी। गान्धी जी द्वारा प्रस्तुत किये गये असहयोग के प्रतिज्ञापत्र पर सबसे पहले उन्होंने अपना हस्ताक्षर किया। उन्होंने अपनी 'कैसरे हिन्द' की उपाधि त्याग दी, जो उस समय अंग्रेजों द्वारा दी गई अत्यन्त प्रतिष्ठा की वस्तु मानी जाती थी। भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम के संदर्भ में हम सरोजिनी नायडू को **'वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि'** कह सकते हैं।

गांधी जी की पत्नी कस्तूरबा गांधी भारत को स्वतंत्र करने में सदैव गांधी जी के साथ रहीं और जेल भी गईं। कहना तो यह चाहिए कि अगर 'बा' नहीं रहतीं तो 'बापू' भी नहीं रहते। 'बा' जीवन भर गृहस्थी का कष्ट और कठिनाइयाँ तो झेलती ही रहीं, इसके साथ-ही-साथ राजनैतिक रूपसे भी अपने त्याग और तपस्या के व्रत से कभी विमुख नहीं हुईं। सेवा का अद्‌भूत आदर्श उन्होंने प्रस्तुत किया।

कस्तूरबा एक ऐसी महान भारतीय स्त्री थीं, जिन्होंने अन्त



समय तक गृहस्थी का संचालन और पति सेवा के आदर्श का पूर्ण रूप से पालन करते हुए सार्वजनिक जीवन में भी पूर्ण रूप से भाग लेकर नारियों के अधिकारों के मार्ग को प्रशस्त किया।

गांधी जी के असहयोग आन्दोलन में भाग लेने वाली नारियों के त्याग और आत्म-बलिदान ने ही यह स्थिति उत्पन्न कर दी कि भारतीय स्त्री आज राजदूत, राज्यपाल, मुख्यमंत्री, प्रधानमंत्री और राष्ट्रपति के सर्वोच्च पदों तक पहुँच सकी हैं।

पं. जवाहर लाल नेहरू की माता स्वरूप रानी, उनकी बहन श्रीमती विजय लक्ष्मी पंडित और उनकी पत्नी कमला नेहरू ने भी स्वाधीनता-आन्दोलन में सक्रिय रूप से भाग लिया और जेल भी गईं। स्वतंत्रता सेनानियों में श्रीमती दुर्गाबाई देशमुख, अरूणा आसफअली और सुचेता कृपलानी आदि के नाम भी उल्लेखनीय हैं। अगर प्रभावती का योगदान और समर्थन न रहता तो जय प्रकाश नारायण भी एक सफल स्वतंत्रता सेनानी और आजादी के पहले और आजादी के बाद भी एक सफल कार्यकर्त्ता और देशभक्त न बन पाते। सरदार भगत सिंह का देश हित के लिए जो बलिदान हुआ, उसमें उनकी माँ की प्रेरणा ही काम कर रही थी। शिवाजी को जिस प्रकार उनकी माँ जीजाबाई ने मुगलों से संघर्ष करने के लिए तैयार किया था, उसी प्रकार सरदार भगत सिंह की माता ने भी उन्हें क्रान्ति पथ का पथिक बनने में प्रेरणा दी थी।

देश की आजादी की लड़ाई में मुस्लिम महिलायें जो घर की चहारदीवारी में कैद रहकर सख्ती से पर्दा प्रथा का पालन करती थीं, उन्होंने भी आजादी की लड़ाई में अहम् योगदान किया और अपने पिता, भाई, पति और पुत्र को आजादी की लड़ाई में हिस्सा लेने के लिए प्रोत्साहित किया। आवश्यकता पड़ने पर पुरुषों के कंधे-से-कंधे

मिलाकर आन्दोलन में साथ दिया। इन मुस्लिम महिलाओं में बेगम हजरत महल, जुबैदा दाउदी, सादत बानो, जुलैखा बेगम, निशात-उन-निशा बेगम, रजिया खातून, अकबरी बेगम, असगरी बेगम आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

हिन्दुस्तान की आजादी के लिए देश की महिलाओं ने तो अपना सर्वस्व बलिदान किया ही, विदेशी महिलायें भी इसमें पीछे नहीं रहीं। हिन्दुस्तान की आजादी के लिए पहल और प्रयास करने वाली विदेशी महिलाओं में श्रीमती ऐनी बेसेंट और सिस्टर निवेदिता के नाम बहुत आगे हैं। इन्हीं के साथ मीरा बेन मारग्रेट कजन्स के नाम को भी भुलाया नहीं जा सकता। गांधी जी के व्यक्तित्व की चुम्बकीयता के चारों ओर एकत्र होकर, इन महिलाओं ने भारतीय स्वतंत्रता की लड़ाई लड़ी और हमने इन महिलाओं के सहयोग से अपनी खोई हुई आजादी हासिल की।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद और स्वतंत्रता से पूर्व श्रीमती इंदिरा गांधी का भी योगदान अविस्मरणीय है। आजादी की लड़ाई में इन्होंने 'बानर सेना' बनाई थी और देश की प्रथम महिला प्रधानमंत्री बनने के बाद इन्होंने अपने प्रधानमंत्रित्वकाल में देश का हर संभव विकास किया। किसी की भी असली ताकत की पहचान संकट के काल में ही होती है कि वह कितने धैर्य के साथ परिवार, समाज और देश को चलाता है। श्रीमती इंदिरा गांधी ने पराधीनता के समय भी अपनी किशोरावस्था और युवावस्था में आजादी की लड़ाई में योगदान दिया और स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद प्रधानमंत्री होकर भारतवर्ष के नवनिर्माण में भी अपनी पूर्ण भूमिका निभाई।

कहना न होगा कि भारत के इतिहास में महिलाओं का योगदान संघर्ष के मामले में, आदर्श और त्याग के क्षेत्र में, पुरुषों से



जरा भी कम नहीं रहा है। नारियाँ अपनी कष्ट-सहिष्णुता और आदर्श के लिए सदैव जानी-पहचानी जाती रही हैं। इतना ही नहीं, पर्दे के पीछे रहकर उन्होंने अपने पतियों, पुत्रों, भाइयों और सहायकों को इस प्रकार उत्प्रेरित और उत्साहित किया है कि वे देश का इतिहास गढ़ने में सक्षम हो सके हैं। यह उक्ति प्रसिद्ध रही है कि–**'हर पुरुष के निर्माण में किसी-न-किसी नारी का हाथ रहा है।'** यह बात भारतीय इतिहास के स्वतंत्रता-आन्दोलन में भी सार्थक रही है। स्त्रियों ने अपने-अपने स्नेहियों और सम्बन्धियों को बड़ी ही राजी-खुशी से भारतीय स्वाधीनता-आन्दोलन में अर्पित किया। विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार का प्रस्ताव जब महात्मा गांधी ने किया तो विदेशी कपड़ों की दुकान पर पिकेटिंग करने और उनकी होली जलाने में नारियाँ सबसे आगे रहीं। दरभंगा के ही पं. रामनंदन मिश्र जो स्वातंत्र्य आन्दोलन में महात्मा गांधी के अन्यतम सहयोगी रहे, ने अपनी पत्नी राजकिशोरी देवी को स्त्रियों का सहयोग और समर्थन जुटाने के लिए पर्दे से बाहर कर दिया। उनके घर में पर्दे का कठोर अनुशासन था। इसके लिए उनके पिता ने उन्हें अपने घर से निष्कासित भी कर दिया लेकिन उन्होंने अपनी पत्नी को स्त्रियों का नेतृत्व करने तथा खादी का प्रचार करने के लिए परिवार से भी संघर्ष मोल लिया। उनकी पत्नी राज किशोरी देवी ने उनका भरपूर सहयोग किया। स्वयं गांधी जी ने और उनके द्वारा भेजे गये लोगों ने राज किशोरी देवी को प्रेरित कर अपने साथ संघर्ष में शामिल किया।

अवन्तिका बाई गोखले का नाम बहुत कम लोग ही जानते होंगे, जो सेवा-व्रत का आदर्श उपस्थित करते हुए प्रकारान्तर से स्वतंत्रता-संग्राम में अपना योगदान करती रहीं। गांधी जी के आदेश पर ये अपने पति के साथ चम्पारण के लिए चल पड़ीं। अवन्तिका

बाई ने निलहे गोरों द्वारा चम्पारण के किसानों पर हो रहे अत्याचार के खिलाफ संघर्ष किया। इंग्लैंड से लौटने के बाद स्वदेश आते ही उन्होंने 'भारत सेवक समिति' के प्रसिद्ध कार्यकर्त्ता श्री देवधर की प्रेरणा से बम्बई की प्रसिद्ध संस्था 'सेवा सदन' में कार्य करना प्रारंभ किया। गांधी जी के साथ राष्ट्रीय आन्दोलन के कार्यक्रमों में भाग लेने का एक लाभ यह हुआ कि उन्होंने 'हिन्द महिला समाज' के नाम से एक नई संस्था की स्थापना की। इसका उद्देश्य मध्यम श्रेणी की महिलाओं को कार्यक्षेत्र में लाना था। समाज और देश की समस्याओं को समझने और सुलझाने के लिए उन्होंने महिलाओं में नया जोश-खरोश पैदा किया। उन्होंने खादी से प्रेम रखते हुए उसके प्रचार के लिए भी खूब उद्योग किया। सन् 1942 में जब गांधी जी पूना की जेल में कैद थे तो अवन्तिका बाई ने उनके पास खादी की धोतियाँ भेंट के रूप में भेजी। अवन्तिका बाई 'स्वतंत्रता-आन्दोलन' के 'युद्ध समिति' की अध्यक्ष चुन ली गईं और जेल भी गईं। 26 अक्टूबर को उन्होंने अनेक महिलाओं और लड़कियों के साथ आजाद मैदान में झण्डा फहराया।

महात्मा गांधी के अनुयायी जमुना लाल बजाज की पत्नी जानकी देवी भी स्वयं सत्याग्रह करके जेल गईं और अपने पुत्रों को भी प्रेरित कर जेल भेजा। महात्मागांधी के असहयोग-आन्दोलन में समस्त भारत में जहाँ जेल जाने वाले पुरुषों की संख्या लाखों थी, वहाँ स्त्रियों ने भी हजारों की संख्या में जेल यात्रा की थी। यह कम साहस की बात नहीं है कि जेल जानेवाली सभ्य, सहृदय और ऊँचे परिवार की स्त्रियाँ जेल की सख्ती बर्दास्त करते हुए, बिना घबराहट के, धैर्यपूर्वक वहाँ रहती थीं।

इस प्रकार यह कहना हमारे लिए गर्व का विषय है कि हमारे



देश की महिलाओं ने 1857 के स्वतंत्रता-संग्राम से लेकर 1947 तक के संघर्ष में कहीं भी पुरुषों से कम अपना योगदान नहीं किया। अधिकांश जीवन घर के भीतर बिताने के बावजूद इन नारियों ने सभ्यता और संस्कृति की सुरक्षा की, शान्ति और सुराज्य का माहौल कायम किया। समाज सुधार और जनसेवा में संलग्न रहीं तथा सेवा और संघर्ष का आदर्श उपस्थित किया।

❐❐❐

# इक्कीसवीं सदी में लड़कियों के प्रगतिशील कदम और अभिभावकों के कर्त्तव्य

समाज रूपी गाड़ी के जिस प्रकार दो पहिये हैं– स्त्री और पुरुष, उसी प्रकार उसको गतिशील करने के लिए मजबूत धुरियों का काम बालक और बालिका करती हैं। देश और राष्ट्र को अगर जिंदा रखना है, उसे प्रगति के पथ पर ले जाना है, समाज को तीव्रता से विकास प्रदान करना है, सन्तुलन रखना है तो बालिकाओं को प्रश्रय देना अनिवार्य है। एक समय था जब भारतीय संस्कृति में पुरुषों की तरह महिलाओं को भी महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त था परन्तु आज का समय इसके विपरीत है। आज हम समाज के विकास के लिए बालिकाओं पर समुचित अनुशासन रखने एवं उनके संरक्षण-निरीक्षण को भूल रहे हैं। बालिकाओं के लालन-पालन, खान-पान, रहन-सहन, शिक्षा आदि पर आज पहले की अपेक्षा अधिक ध्यान जरूर दिया जा रहा है किन्तु अभी भी आवश्यकता बनी हुई है कि परिवार में आरंभ से ही बालकों और बालिकाओं में विभेद न किया जाय तथा उन्हें समान रूप से शिक्षित और सुसंस्कृत करने का प्रयत्न किया जाए। बालिकाओं को विकास के पथ पर अग्रसर कर हम समाज को कुंठा, ग्लानि और एकपक्षीय होने से बचा सकते हैं। आज का शिक्षित परिवार इस सीमित दायरे से निकल चुका है कि लड़कियों को शिक्षा देना अनिवार्य नहीं है। सभी शिक्षित परिवारों में बालक और बालिकाओं में इस अंतर को हटाया जा रहा है और यह महसूस किया जा रहा है कि बालिकाओं के प्रति भेद-भाव करना उनके साथ घोर अन्याय है।

बालिकाओं का विकास, उनमें स्वाभिमान का जागरण, आत्म विश्वास का आगमन और जीवन में उड़ान भरने की क्षमता, आगे बढ़ने का हौसला, तब तक नहीं आ सकता जब तक हम उनकी इस मानसिकता को पुष्ट नहीं कर देते हैं कि वस्तुतः परिवार के बालक और उनमें यानी भाई-बहन में कोई अन्तर नहीं है। भाई अगर पढ़ने में अच्छा कर सकता है, समाज का नेतृत्व कर सकता है तो बहन भी समस्याओं पर सोच-विचारकर अपना निर्णय देने में कुशल एवं पटु हो सकती है। अगर शिक्षा का पूर्ण प्रयोग बालिकायें अपने जीवन में करती हैं, पढ़े हुए पर आचरण करती हैं, खुले दिमाग से उसे समझती हैं तो वे स्वयं ही उन बुराइयों को दूर करने में समर्थ हो जायेंगी जो सदियों से उनका रक्त-शोषण कर रही हैं। जिन गाँवों या परिवारों में बालिकायें स्कूल जाती ही नहीं हैं, वहाँ वे जीवन भर असाक्षरता का शिकार बनी रहती हैं। यह प्रसन्नता का विषय है कि बालिका शिक्षा के विकास के लिए महिला समाजसेवी संगठनों द्वारा भरपूर प्रयास किया जा रहा है। सरकार भी अपनी ओर से अनेक प्रकार के अनुदान बालिकाओं को देकर, अनेक प्रकार से उनकी प्रगति का मार्ग प्रशस्त कर रही है।

स्थान-स्थान पर प्राथमिक एवं मध्य विद्यालयों की स्थापना

की गई है, जिससे बालिकायें आसानी से समीप में जाकर शिक्षित हो जायें। पहले लड़कों को भी शिक्षा प्राप्त करने के लिए दूर-दूर तक जाना पड़ता था। प्राथमिक शिक्षा तक तो बात ठीक रहती थी कि गाँवों के आस-पास कोई विद्यालय हुआ करता था किन्तु माध्यमिक और उच्च माध्यमिक शिक्षा के लिए लड़कों को दस-दस, पन्द्रह-पन्द्रह मील पैदल जाना पड़ता था। स्वतंत्रता के बाद कुछ उच्च विद्यालय जरूर खुले, लेकिन वे भी पर्याप्त नहीं थे। जब लड़कों की शिक्षा के लिए इतनी कठिनाइयाँ थीं, तब फिर लड़कियों की शिक्षा, खासकर निम्न मध्यम वर्गीय परिवारों की लड़कियों की शिक्षा तो **'आकाश-कुसुम'** ही थी। सरकार के द्वारा अब जगह-जगह बालिकाओं के लिए प्राथमिक एवं मध्य विद्यालयों की स्थापना से बालिकायें आसानी से समीप के विद्यालय में जाकर मध्यस्तरीय शिक्षा प्राप्त कर सकती हैं। माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में सरकार की ओर से प्रत्येक प्रखण्ड में एक-एक परियोजना बालिका उच्च विद्यालय खोले गये हैं। जहाँ बालिकाओं को माध्यमिक स्तर तक की नि:शुल्क शिक्षा की सुविधा उपलब्ध है। ग्रामीण बालिकाओं और उनके अभिभावकों को भी सरकार द्वारा दी गई इस सुविधा से लाभ उठाना चाहिए और जीवन के हर क्षेत्र में आगे बढ़ने के लिए अपने को तैयार रखना चाहिए।

यह ठीक है कि लड़कियाँ अब प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा अगर मन से प्राप्त करना चाहें तो मजे में और सुविधा से हासिल कर सकती हैं। किन्तु यह शिक्षा उन्हें साक्षर तो बना देगी, सम्भव है कि एक सीमा तक अपनी तेजस्विता से उन्हें ज्ञान की प्राप्ति भी हो जाये, किन्तु यहीं से वे संतोष कर लेंगी तो वे राष्ट्र के विकास में योगदान करने की सहभागिनी शायद ही हो सकें। लड़कियों



का जीवन अनेक उत्तरदायित्वों से भरा हुआ है। पढ़-लिखकर भी उन्हें पारिवारिक दायित्वों से मुक्ति नहीं मिल सकती है। परिवार ही इनका प्रधान कार्यक्षेत्र है। उच्च शिक्षा यद्यपि विशेष कुछ नहीं करती, वह नींव के आधार पर ही एक ठोस मकान खड़ा करती है, किन्तु उच्च शिक्षा इतना अवश्य करती है कि सोचने और समझने का क्षितिज विस्तृत कर देती है। व्यक्ति महत्वाकांक्षी योजनाएँ बनाने लगता है। अतएव अगर लड़कियों को परिवार से बाहर परिक्षेत्र का ज्ञान और कर्त्तव्य सिखलाना है तो उन्हें उच्च शिक्षा की ओर प्रेरित करना ही होगा। साथ ही उच्च शिक्षा प्राप्त करने की व्यवस्था भी करनी होगी। उच्च-शिक्षा और कुछ नहीं तो व्यक्ति को परिस्थितियों के अनुरूप ढलने की कला सिखलाती है। उच्च-शिक्षा हममें उदारता, तेजस्विता, मनस्विता, चिन्तनशीलता और योजनाओं को बनाने की क्षमता प्रदान करती है। उच्च-शिक्षा हमारे कानों में जैसे कहती है-**''सितारेां से आगे जहाँ और भी हैं, अभी इश्क के इम्तहाँ और भी हैं।''**

प्रत्येक माँ का यह दायित्व बनता है कि वह अपनी पुत्री को स्कूल-कॉलेज की शिक्षा के साथ-साथ जीवन की समस्याओं से जूझने की व्यावहारिक शिक्षा भी देती चले, अन्यथा आगे चलकर उनका जीवन दूभर हो जायेगा। किताबी सिद्धान्तों के मनन से हम विद्वान चाहे जितना हो जायें, व्यावहारिक नहीं हो सकते। लड़कियाँ अगर उच्च शिक्षिता होंगी तो वे पढ़े हुए सिद्धान्तों को व्यवहार की कसौटी पर कसेंगी। माता-पिता की सजग दृष्टि, उच्च शिक्षा का संस्पर्श और स्वयं का सोच, लड़कियों में जहाँ एक तरफ अनुशासन, त्याग, सहिष्णुता आदि का पाठ पढ़ायेगा वहीं उन्हें इस योग्य भी बनायेगा कि वे जीवन-संघर्ष में आगे बढ़कर अपना स्थान सुनिश्चित

करें। यदि एक उच्च शिक्षित व्यक्ति केवल विद्वान बनकर रह जाता है तो अन्धकक्ष में बैठकर वह चाहे कितनी ही श्रेष्ठ रचनायें अपने मन से कर ले, लेकिन वह समाज को दिशा नहीं दे सकता।

आज भी देखा यह जा रहा है कि पढ़ी-लिखी महिलायें भी अपने को सुरक्षित नहीं पातीं। घर से बाहर निकलने में अभी भी महिलायें घबराती हैं, दो-चार अपवादों को छोड़कर। इसके लिए हमारा समाज दोषी है। हमें ऐसे समाज को बदलना होगा और एक ऐसे समाज का सृजन करना होगा जिसमें बालिकाओं को कहीं आने-जाने, उठने-बैठने, पढ़ने-लिखने, घूमने-फिरने में मनोवैज्ञानिक असुरक्षा का दबाव न हो। उन्हें जीवन-साथी चुनने की स्वतंत्रता भी मिलनी चाहिए और ऐसा होने से जहाँ बालिकाओं को घुटन नहीं होगी, वहीं समाज का विकास भी होगा। हम जब अपनी लड़कियों को पूरे मन से उनकी उन्नति के लिए स्वतंत्रता का अधिकार देंगे, तो वे अपने कर्त्तव्य का निर्धारण स्वयं कर लेंगी और क्या करणीय है तथा क्या अकरणीय है, इसका विचार भी वे भली-भाँति कर लेंगी। यदि एक प्रगतिशील समाज की स्थापना करनी है तो लड़कियों को भी एक सीमा के अन्दर स्वतंत्रता प्रदान करनी होगी किन्तु उन्हें बालकों से अन्तरित नहीं करना होगा, भेद-भाव नहीं करना होगा। उनकी कुंठा को दूर करने का यही एक मात्र उपाय है। आज भी हमारे समाज में बालिकाओं में आरंभ से ही हीन भावना बैठ जाती है। वे न तो अधिकार का महत्व समझ पाती हैं और नहीं कर्त्तव्य का मूल्य। समाज में फैली रूढ़िवादिता, बाल-विवाह, दहेज-प्रथा और पर्दा-प्रथा आदि बालिकाओं को हतोत्साहित करती रहती हैं। दहेज की प्रथा तो ऐसा क्रूर दानव है जो लड़कियों की किसी भी महत्वाकांक्षा को सुरक्षित नहीं रहने देता बल्कि उसका गला घोंट देता



है।

स्वतंत्रता के बाद बाल-विवाह में तो क्रमशः बहुत कमी आयी है, जो सदियों से लड़कियों की उन्नति में बाधक बनकर उनकी प्रतिभा को कुंद कर देती थी। यह संतोष की बात है कि इस कुप्रथा को दूर करने के लिए हमारा समाज आज कटिबद्ध हो गया है। लड़कियों के विकास में यह अत्यन्त ही आवश्यक है कि आज की तारीख में वे अपने को तनिक भी कमजोर नहीं समझें। उन्हें अपने में वह शक्ति महसूस करनी होगी जिसके आधार पर महाचण्डी ने महिषासुर का वध किया था। महिलाओं के लिये विकास के अनेक दरवाजे सरकार ने भी खोले हैं और कई गैर सरकारी संगठन भी इस क्षेत्र में क्रियाशील हैं, किन्तु–''God helps those who help themselves'' 'ईश्वर मात्र उन्हीं की सहायता करता है जो अपनी सहायता आप करते हैं'–की उक्ति के अनुसार लड़कियों को आगे बढ़ना तो स्वयं है। एक आदमी किसी अच्छे काम के लिए निकलता है तो शुरू में उसको चाहे जो कठिनाई हो लेकिन बाद में साथ देनेवाले बहुत से लोग आ ही जाते हैं। झाँसी की रानी, लक्ष्मीबाई जब पहले घर से बाहर निकलीं तो अंग्रेजों के छक्के छुड़ाने के लिए तात्या तोपे और बिहार के वीर कुँवर सिंह जैसे समर्थक भी उन्हें मिलते गए। अगर एक व्यक्ति साहस नहीं करेगा तो ऐसे ही सब एक दूसरे का मुँह देखते रह जायेंगे। यह बात दिखाई पड़ रही है कि अब हमारी लड़कियाँ मजबूत होकर, महत्वाकांक्षी होकर, अपनी सफलता का परचम ऊँचाई पर लहरा रही हैं। किसी भी विद्यालय में लड़कियों की संख्या लड़कों से कम नहीं है। महाविद्यालयों में तो लड़कों से कंधा से कंधा मिलाकर लड़कियाँ शिक्षा ग्रहण कर रही हैं। कितने ही बलात्कारियों एवं अपराधियों से स्वयं जूझकर बालिकाएँ अपने विकास

के प्रशस्त मार्ग पर चल रही हैं। वे बाहर आकर मुक्त भाव से अपने साथियों की भी आपत्ति-विपत्ति में सहायता करती हैं और घर में भी माता-पिता एवं भाई-बन्धु का, उनके कार्यों में हाथ बंटाती हैं। अब लड़कियाँ केवल चुल्हा-चौके तक ही सीमित नहीं हैं। वे कल्पना चावला की तरह चांद छूने को मचल रही हैं। उनके विकास से रोगमुक्त एवं शिक्षित समाज का विकास हो रहा है। कहना न होगा कि इसमें बालिकाओं के माता-पिता का जितना सहयोग है, उससे अधिक सरकार की मदद मिल रही है।

यह तो हुई बालिकाओं द्वारा स्वत: आगे बढ़कर समाज और सरकार के सहयोग से अपने विकास के पथ पर अग्रसर होने की बात। बढ़ती उम्र में बालिकाओं के साथ बहुत सी समस्यायें ऐसी भी होती हैं, जिनके कारण वे या तो बालकों की तुलना में हीन भावना की शिकार हो जाती हैं और एकदम दब्बू बन जाती हैं या फिर उम्र में अचानक बदलाव के कारण आई परिस्थितियों के कारण उच्छृंखल हो जाती हैं। विपरीत सेक्स के प्रति लड़के-लड़कियों का आकर्षण बढ़ने लगता है। लड़कियों की शारीरिक बनावट में तेजी से आये बदलाव लड़कों को लुब्ध करने लगते हैं। यह उनके लिए एक अलग समस्या होती है। इसका प्रभाव उनकी पढ़ाई-लिखाई, रहन-सहन और आहार-आचरण पर भी होने लगता है। इन सारे परिवर्त्तनों के कारण लड़की असमंजस का शिकार हो जाती है। तरह-तरह की आशंकाएं, उत्सुकताएं और सवाल-जवाब उसके जेहन में पनपने लगते हैं। शारीरिक और मानसिक बदलाव के कारण लड़की शर्मिन्दगी का शिकार हो जाती है। दरअसल लड़कियों के साथ समस्या यह होती है कि उनके शारीरिक परिवर्त्तन लड़कों के आकर्षण का कारण होते हैं। इसीलिए वे अन्तर्मुखी हो जाती हैं, अपनी समस्यायें अभिव्यक्त



नहीं कर पातीं, स्वयं निर्णय लेने में अक्षम हो जाती हैं। उनकी भावनाओं को परिवार में सम्मान नहीं मिलता, इसलिए वे परेशान हो जाती हैं और इसका असर उनके दैनिक जीवन और पढ़ाई लिखाई पर भी पड़ता है। वे जहाँ घरेलू कामों के प्रति उदासीन हो जाती हैं, वहीं शिक्षा के प्रति भी लापरवाह। कम उम्र में माँ बन जाना भी आज से पहले लड़कियों की समस्या हुआ करती थी। अब उच्च वर्ग में न के बराबर और मध्यम वर्ग में भी यह समस्या कम हो रही है। लड़कियों का विवाह अक्सर वयस्क होने पर ही किया जा रहा है और इसी कारण लड़कियाँ शिक्षित भी हो रही हैं। उनमें आत्मविश्वास भी आ रहा है। अपनी शारीरिक और मानसिक समस्याओं के प्रति वे अब असावधान नहीं रहतीं और उन्हें समझकर अच्छी तरह से उनका निराकरण करती हैं तथा अपने उत्तरदायित्वों का भी निर्वाह करती हैं।

गाँवों और देहातों में माँ और घर की बड़ी औरतों का आज यह कर्त्तव्य बनता है कि वे अपनी लड़कियों को उनके शारीरिक विकास से परिचित करावें। गाँवों में सरकार ने 'आँगनवाड़ी' और 'आशा' जैसी योजनाएँ चलाकर बालिकाओं की समस्याओं को सुलझाने की ओर ध्यान दिया है। बालिकाओं को उनके प्रश्नों के उत्तर के लिये स्वस्थ साधन और स्रोत मिलने चाहिए। इधर-उधर से प्राप्त अधूरा ज्ञान उन्हें मानसिक तौर पर कुंठित कर देगा। लड़कियों को अत्यधिक बन्दिशों से मुक्त करना होगा। बात-बात पर रोक-टोक उनके मानसिक विकास में बाधक हो जाता है। उन्हें स्वयं निर्णय लेने का अवसर मिलना चाहिए।

कुल मिलाकर हम बालिका विकास में अपने कर्त्तव्यों और उनकी समस्याओं पर जब विचार करते हैं तो आज इक्कीसवीं सदी में यह तथ्य सामने आ रहा है कि लड़कियों के लिए आज आगे

बढ़कर पहले की तरह बहुत कुछ करने की आवश्यकता नहीं है, वरन् उन्हें सहारा मात्र देना है, वैसे ही जैसे कुम्हार चाक पर चढ़े हुए वर्त्तन की सुडौलता के लिए बड़ी सावधानी से उसे पकड़ता, उसकी देख-रेख करता, उसे संभालता और अन्त में अपने महीन धागे से उसे बड़ी बारीकी से काटकर चाक से अलग कर देता है। लड़कियाँ आज खूब ही बढ़ रही हैं, बस हमें उनपर दृष्टि रखनी है और वह भी तभी तक जब तक वे स्वयं अपना बुरा-भला नहीं सोचने और समझने लगती हैं।

❐❐❐

# साहित्य, संगीत और कला की धुन टेरती आधुनिक नारी

साहित्य है सम्वेदना की अविरल धारा और नारी सम्वेदना की सम्मोहक मूर्त्ति है। इसलिए साहित्य मूलतः जब श्रेष्ठ होना चाहता है तब वह नारी का आश्रय लेता है। सम्वेदना की सूक्ष्मता जब स्थूल रूप में निखर उठी और जब इसकी अभिव्यक्ति साहित्य में हुई तो उसे ऐसे आधार की आवश्यकता हुई जो उसे ठीक-ठीक रूपायित कर सके। नारी का महत्व साहित्य में इसलिए नहीं है कि उसकी सुन्दरता मात्र उपभोग की वस्तु है बल्कि नारी में जो सौन्दर्य है, भंगिमाओं का जो लावण्य है, नैतिक और सांस्कृतिक मूल्यों की जो सुरक्षा है और सामाजिक परिवेश तथा सामाजिक मूल्यों का जो वैभव है, वही उसे साहित्य में महत्त्वपूर्ण बनाता है। प्रेमचंद ने कहा था-**''अगर नारी में पुरुष के सारे गुण आ जायें तो वह व्यभिचारिणी बन जाती है किन्तु पुरुष में नारी के सब गुण आ जायें तो वह महान बन जाता है।''** यह भी कहा गया है कि **''प्रत्येक पुरुष की महानता के पीछे किसी-न-किसी नारी का**

**हाथ है।**'' विश्व कवि रविन्द्रनाथ टैगोर ने भी कहा था कि **उनके भीतर एक विरहिणी नारी सदैव रुदन करती रहती है।** इन सभी कथनों का तात्पर्य यही है कि मूल रूप से सम्वेदना ही मानवीय मन को साहित्य सृजन के लिए प्रेरित करती है और स्त्री पुरातन से अद्यतन कालतक सम्वेदना, सौन्दर्य और श्रृंगार की त्रिवेणी रही है। साहित्य में सत्यं, शिवं और सुन्दरम् की जो बात कही गई है, उसमें सत्य सौन्दर्य है, शिव इसका कल्याणकारी और निर्णायक स्वरूप है तथा सौन्दर्य शील और शुचिता है।

यह अवश्य है कि पुरुष साहित्यकारों के नाम पहले से साहित्य में छाये रहे हैं अथवा उनकी अधिकता है, किन्तु यह भी सत्य है कि सामन्ती मानसिकता पर करारा प्रहार करने वाली नारी लेखिकाओं की आज कमी नहीं है। अगर संख्या की बात भूल जाएं तो साहित्य के आकाश में सांस्कृतिक ध्वजा को नारियों ने दमदार ढंग से लहराया है। नैतिकता और सामाजिकता के प्रत्येक विषयों को नारियों ने साहित्य से जोड़ा और अपनी अस्मिता और अस्तित्व का बोध कराया।

साहित्य में आध्यात्मिक, मानसिक और अत्यंत सात्त्विक ऊँचाई प्रदान करने वाली नारियों में साहित्य-साधिका मीरा बाई का नाम उस तारिका के सदृश है, जो अपने प्रकाश से अनेक तारों को फीका कर चुकी हैं। मीरा ने तलवार से नहीं, कलम से कमान का काम लिया और सामाजिक बंधनों के जाल को अपने प्रेम के तीर से छिन्न-भिन्न कर दिया। तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक बंधनों को तोड़कर उन्होंने भक्ति के साथ प्रेम और पीड़ा का अभिन्न भाव साहित्य को प्रदान किया। मीरा की कविता के बिना हिन्दी साहित्य का लालित्य अधूरा रह जायेगा, वाणी का वैभव बौना हो जायेगा और प्रेम का छौना अपंग और अपाहिज। मीरा किसी भी तरह महाकवि



सूरदास और तुलसीदास की अनुभूतियों और काव्य सर्जनाओं से कम नहीं हैं। तुलसीदास से भी इनको प्रेरणा मिली थी और कहा जाता है कि जब इन पर इनके परिवार वालों का अत्याचार बहुत भीषण होने लगा तो इन्होंने गोस्वामी जी से अपना मार्ग पूछा। गोस्वामी तुलसीदास ने स्पष्ट तौर पर लिखा जो पद अत्यंत प्रसिद्ध है–''**जाके प्रिय न राम वैदेही, तजिए ताहि कोटि बैरी सम, जदपि परम सनेही।**'' और मीरा ने गोस्वामी तुलसीदास के इस पद को गुरुमंत्र मानकर, परिवार और समाज को त्यागकर कृष्णभक्ति की धूनि रमा ली।

हिन्दी साहित्य में आधुनिक मीरा के नाम से जानी जाती हैं–महादेवी वर्मा। इन्होंने पद्य और गद्य दोनों ही क्षेत्रों में अपनी लेखनी का चमत्कार दिखाया। छायावाद की अरुन्धती कही जाने वाली महादेवी की अभिव्यक्तियों में सरसता, सम्वेदना, कुतूहल मिश्रित वेदना और विस्मृति तथा वियोग की अक्षुण्ण ध्वनि है, जिसमें आत्मा को परमात्मा से मिलने की निरंतर छटपटाहट है। अपनी पीड़ा, वेदना एवं संवेदनशीलता को बहुत ही सुन्दर, सरस एवं मार्मिक अभिव्यक्तियों से इन्होंने अपनी रचनाओं नीहार, रश्मि, नीरजा, सान्ध्यगीत, श्रृंखला की कड़ियाँ, दीपशिखा आदि में उकेरा है। इनकी रचनाओं में दु:ख-दर्द एवं पीड़ा के साथ-साथ उम्मीदें भी हैं, आशाएँ भी हैं–''**मैं नीर भरी दु:ख की बदली। स्पन्दन में निस्पंदन बसा, क्रन्दन में आहत विश्व हँसा, नयनों में दीपक से जलते, पलकों में निर्झरणी मचली।**''

महादेवी वर्मा सात वर्ष की उम्र से ही कविता लिखने लगी थीं और उसी समय से उनकी कविताएँ देश की प्रसिद्ध पत्र-पत्रिकाओं में स्थान पाने लगी थीं। उनके व्यक्तित्व में त्याग, उदारता, करूणा, आधुनिक बौद्धिकता, गम्भीरता, सरलता समाहित थीं। स्त्री जीवन की समस्याओं पर इन्होंने अपनी लेखनी उठाई है। सही अर्थ में तो यह

कहा जायेगा कि हिन्दी साहित्य में नारी मानसिकता को उजागर करने, इसको पूरी तरह खोलने का श्रेय महादेवी वर्मा का है।

तोरण देवी शुक्ल, विद्यावती कोकिल आदि नामों के साथ सुभद्रा कुमारी चौहान का नाम उन प्रखर राष्ट्र प्रेमी कवियों, कलाकारों के बीच अभिनंदनीय है, जिन्होंने अंग्रेजी गुलामी में जकड़ी भारत माता को स्वतंत्र करने के लिए गर्जना की। इस सिंहनी कवयित्री का स्वर उस समय के किसी भी कवि से कमजोर और कमतर नहीं है। झाँसी की रानी इनकी प्रसिद्ध कविता जन-जन का कंठहार बन गई। लोगों की जुबान पर चढ़ गई। स्वातंत्रोत्तर काल में पचास के दशक से लेकर आजतक के बच्चों, बूढ़ों और जवानों की जुबान पर भी यह पंक्ति अपना निशान छोड़ती सुनाई पड़ती है–**''खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी।''** इसी प्रकार **'वीरों का कैसा हो वसन्त'** उनकी प्रसिद्ध कविता है जिसमें कवयित्री ने वीररस के कवियों 'भूषण और चन्द' को याद किया है तथा उनसे यह प्रार्थना की है कि स्वतंत्रता संघर्ष के लिए वे उन्हें बिजली की तरह छन्द प्रदान करें, जो अंग्रेजी दासता को मार गिराये।

आधुनिक साहित्य में भी नारियों की दमदार उपस्थिति है। ये अपनी लेखनी जीवन की गूढ़ समस्याओं के समाधान में उठा रही हैं और अपने विचारों से नारी समाज एवं देश को लाभान्वित कर रही हैं।

महाश्वेता देवी का 'जंगल का दावेदार', कृष्णा सोवती का 'जिन्दगी नामा' एवं 'दिलोदानिश' मन्नू भंडारी का 'महाभोज', प्रभा खेतान का 'तालाबन्दी', मृदुला गर्ग का 'अनित्य' आदि रचनाएँ मुख्य हैं। अरूंधती राय की 'दि गॉड ऑफ स्माल थिंग' तो बुकर सम्मान से सम्मानित हो चुकी है। मैत्रेयी पुष्पा ने अपने उपन्यासों में नारी जीवन की वेदना को, विवशता को तो चित्रित किया ही है, अपनी



आत्म कथात्मक पुस्तक 'कस्तुरी कुण्डल बसै' में उन्होंने विस्तृत ढंग से स्त्री की मनोभावनाओं और मजबूरियों को चित्रित किया है।

इस प्रकार अपनी रचनाओं के माध्यम से लेखिकाएँ घर के दोहरे दायित्वों का निर्वहन करते हुए भी नारी की विवशता, शोषण, अन्याय, अशिक्षा, अज्ञान, सामाजिक कुरीतियाँ, अन्धविश्वास के प्रति अपनी आवाज उठा रही हैं और नारी के उत्थान के लिए सुझाव भी दे रही हैं। ये स्त्री विमर्श की ऐसी लेखिकाएँ हैं जो नारी को नये ढंग से समाज में स्थापित कर रही हैं और दिखला रही हैं कि कठिनाइयों से शुरू होकर इन नारियों की सफलता का चेहरा कैसा चमकता है।

जिस प्रकार बैदिक काल की नारियाँ अपाला, घोषा, गार्गी, विश्वावरा आदि ने अपने सूक्ष्म चिन्तन से नारी जगत को नई दिशा दी, उसी प्रकार आधुनिक काल में अमृता प्रीतम, चन्द्रकान्ता, उषा देवी मित्रा, मन्नू भंडारी, कृष्णा सोवती, मृणाल पाण्डेय, मृदुला गर्ग, मंजुल भगत, चित्रा मुद्गल, सिम्मी, हर्षिता, शशिप्रभा शास्त्री, ममता कालिया, मैत्रेयी पुष्पा, शिवानी आदि लेखिकाओं ने नारी की खोई प्रतिष्ठा एवं सम्मान दिलाने तथा उनके पूर्ण विकास के लिए अग्रसर, आज भी हिन्दी साहित्य जगत में अपनी पूर्ण भागीदारी निभा रही हैं और 'इक्कीसवीं सदी नारी सदी' को साकार करने के लिए कटिबद्ध हो रही हैं।

कला के क्षेत्र में भी महिलायें आज बहुत आगे पहुँच चुकी हैं और इस क्षेत्र में भी पुरुषों को चुनौती दे रही हैं। संस्कृत की उक्ति है–**''साहित्य, संगीत, कला विहीनः, साक्षात पशु पुच्छ विषाण हीनः।''** अर्थात् जो व्यक्ति साहित्य, संगीत और कला से विहीन है, वह बिना सिंघ और बिना पूँछ का पशु है। हमारी भारतीय महिलाओं ने पूरे जोर से साहित्य के द्वार पर दस्तक तो दी ही है, उन्होंने कला के क्षेत्र में भी अपने स्वर बुलंद किये हैं। अच्छे और सफल

कलाकारों के मामले में भारत कभी भी कमजोर नहीं रहा है। भारत की सबसे अधिक राशि में बिकनेवाली पेंटिंग 'मकबूल फिदा हुसैन' की रही थी किन्तु अब उनके बाद पेंटिंग के क्षेत्र में जिस महिला का नाम जुड़ा है वह है–'अर्पिता सिंह', जिनकी पेंटिंग 'विश ड्रीम' 9. 6 करोड़ में बिकी है। 'अर्पिता सिंह' इस बात को स्वीकारती हैं कि समाज में जितने ही बन्धन हैं उतनी ही आजादी भी है। किसी भी महिला को यह पता होना चाहिए कि उसे किस काम को करने में आजादी मिल सकती है। चाहे काम कैसा भी हो शुरुआत करने से सफलता मिलती ही है।

मिथिलांचल की गौरव शिल्पगुरु महासुन्दरी देवी को राष्ट्रपति प्रतिभा देवी पाटिल द्वारा मधुबनी पेंटिंग के लिए 'पदम्श्री' पुरस्कार से सम्मानित किया जा चुका है। महासुन्दरी देवी 89 वर्षों की हैं और आज भी कला की उपासना करने में उन्हें कोई परेशानी नहीं है। 1979 में मिथिला पेंटिंग के विकास एवं संवर्द्धन के लिए तथा शिल्पकारों के उत्थान के लिए इन्होंने 'मिथिला हस्तशिल्प सहयोग समिति' का गठन किया और 1600 से अधिक कलाकारों को मिथिला पेंटिंग में प्रशिक्षित किया। इन्हें 1981 में 'राष्ट्रीय पुरस्कार' एवं 2007 में 'शिल्पगुरु सम्मान' भी मिल चुका है।

आज भारत की कला को विदेशों में भी महत्त्वपूर्ण पहचान मिल रही है। पहले हमारे देश का काम देश के बाहर नहीं जाता था, पर अब विदेशों में यहाँ की कला को काफी पसंद किया जाता है और सराहा जाता है। यदि कला के क्षेत्र में यहाँ के लोगों का काम बेहतरीन होता रहा तो लोगों में काम की बारीकियों को जानने की इच्छा और बढ़ेगी और देश के बाहर भारत की कला को और ज्यादा पहचाना जायेगा लेकिन हमारे आगे का जेनरेशन इस बात को कितना आगे बढ़ाती है इस पर निर्भर करता है। अभी तो हमारी नई पीढ़ी



काफी उत्साह से इस क्षेत्र में काम कर रही है और महिलायें तो बहुत ही अच्छा कार्य इस क्षेत्र में कर रही हैं।

नारी से संगीत अभिन्न है। संगीत के क्षेत्र में भारत की महिलायें बहुत आगे हैं। भारत रत्न से सम्मानित स्वर-साम्राज्ञी लता मंगेशकर की आवाज की पूरी दुनिया कायल है। सात दशकों के भीतर 1000 से अधिक फिल्मों में अपनी आवाज का जादू ये बिखेर चुकी हैं। 36 से अधिक भारतीय भाषाओं में अपने गाने रिकार्ड करा चुकी हैं। सात दशकों के दौरान इन्होंने दुनिया भर में अपनी बेहतरीन प्रस्तुतियाँ दी हैं। हम सौभाग्यशाली हैं कि ऐसी स्वर कोकिला ने भारत में जन्म लिया। हमें उनके भारतीय होने पर गर्व है।

सबसे अधिक गाना गाने वाली गायिका के रूप में वर्ष 1984 में लता जी को 'गिनीज बुक ऑफ वर्ल्ड' रिकार्ड में स्थान मिला। सिनेमा जगत में संगीत की रोशनी फैलाने और असाधारण योगदान के लिए इन्हें फ्रान्स का सर्वोच्च नागरिक सम्मान 'द नाइट ऑफ द लीजन ऑफ ऑनर' दिया गया। इन्हें 'मदर टेरेसा' इन्टरनेशनल पुरस्कार भी दिया गया। इन्हीं की छोटी बहन आशा भोंसले भी सिनेमा संसार में संगीत के क्षेत्र में कितने ही संगीत प्रेमियों के दिल में बसी हुई हैं। इन्हें 2001 में दादा साहब फाल्के पुरस्कार मिला। वर्ष 1986 में नेशनल अवार्ड तथा 8 बार फिल्म फेयर पुरस्कार से पुरस्कृत की गईं। लता मंगेशकर और आशा भोंसले ने बाल्यकाल से ही फिल्मों में पार्श्व गायन शुरू किया था। उषा मंगेशकर ने अपनी दोनों बहनों से लगभग 10 वर्षों के बाद पार्श्व गायन शुरू किया। तीनों बहनें आज हिन्दी, मराठी, गुजराती और बंगला गायन की महान हस्ती बन गईं हैं। आशा भोंसले को विश्व गौरव का पुरस्कार से सम्मानित किया गया। इन्हें संगीत के क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान के लिए 'लंदन हाउस ऑफ कामर्स' में सम्मानित किया गया है।

लता, आशा और उषा के बाद अब इसी मंगेशकर परिवार की, आशा भोंसले की पोती 'जनाई' ने भी 'प्ले बैक सिंगिंग' में कदम रख दिया है। अपनी दादी और दादी मौसी की तरह 'जनाई' भी पार्श्व गायन के क्षेत्र में कीर्तिमान होगी। इधर किसी अखबार ने लता मंगेशकर के सम्बन्ध में खबर निकाल दी थी कि अब वह गायन के क्षेत्र से संन्यास ले रही हैं। लता जी ने इसका पुरजोर खण्डन हाल ही में किया है।

सिनेमा संसार से अलग लोकसंगीत की दुनिया में भी नाम रौशन करने वाली महिलायें कम नहीं हैं। इनमें से कई तो राष्ट्रपति सम्मान भी प्राप्त कर चुकी हैं। भोजपुरी लोक-संगीत को विश्व फलक पर पहचान दिलाने का मुख्य श्रेय शारदा सिन्हा को जाता है। शारदा जी जिस तरह भोजपुरी लोक-संगीत में सक्रिय रही हैं उसी तरह सक्रिय वह हिन्दी सिनेमा जगत में भी पार्श्व गायिका के रूप में रही हैं। हिन्दी फिल्मों के लिए उन्होंने सदाबहार गीत गाये हैं। 'पद्मश्री' से सम्मानित शारदा बिहार की स्वर कोकिला मानी जाती हैं। वे भोजपुरी गीतों में अश्लीलता और फूहड़ता का घोर विरोध करती हैं। उनका कहना है कि एक मीठी और अत्यंत खुबसूरत भाषा को कुछ लोगों ने मिलकर बरबाद कर दिया है।

लखनऊ में रहने के बावजूद शहरी चकाचौंध से दूर मालिनी अवस्थी ने हमेशा गाँव पर आधारित गीत-संगीत को अहमियत दिया। भोजपुरी गीतों को भी उन्होंने स्वर दिया है। लेकिन इन्होंने इसमें अश्लील शब्दों का इस्तेमाल कहीं नहीं किया है। मालिनी अवस्थी आकाशवाणी की 'ए' ग्रेड गजल गायिका भी हैं।

मशहूर नाट्यकार हवीव तनवीर की सुपुत्री नगिन तनवीर अपने पिता की मृत्यु के बाद नया भोपाल स्थित 'नया थियेटर' की रोशनी फैला रही है। पिछले कई सालों से पूरे विश्व में 'नया थियेटर' अपना नाम कमा रहा है और बेहतरीन नाटकों का मंचन कर रहा है।



लोक-संस्कृति को अपने गीत और नृत्य दोनों में उभारने वाली तीजन बाई का नाम आज किसी से अपरिचत नहीं है। तेरह साल की उम्र में ही इन्होंने पहली बार एक गाँव में 'पांडवाणी' प्रस्तुत किया। आज पूरे विश्व में इन्होंने 'पांडवाणी' कला से अपनी पहचान बनाई है। छोटे शहरों से लेकर गाँवों में, बल्कि पूरे विश्व में तीजन बाई ने पांडवाणी की लोकप्रियता बढ़ाई है।

मशहूर कत्थक नृत्यांगना सितारा देवी को प्रतिष्ठित 'संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार' एवं नृत्यांगना मल्लिका साराभाई को विश्व कला में अमूल्य योगदान के लिए 'क्रिस्टल अवार्ड' से नवाजा गया है।

इस प्रकार जिसे हम आधी दुनिया की हर प्रकार से हकदार मानते हैं, वह नारी-जगत कला के क्षेत्र में भी अपना इतिहास अमर और अमिट करने में पुरुष वर्ग से कम नहीं है। क्या कविता, कहानी अथवा उपन्यास का क्षेत्र, क्या लोक-संगीत, अभिनय और नृत्य का क्षेत्र, क्या पेंटिंग और मूर्तिकला का क्षेत्र कोई भी महिलाओं से अछूता नहीं है। सबसे बड़ी बात तो धुर गाँव और देहात की उपज महासुन्दरी देवी और पांडवाणी की कलाकार तीजन बाई पर विस्मित होना पड़ता है। इन दोनों ने ही अपने-अपने क्षेत्र में नया इतिहास बनाया है, नई कला कायम की है, प्रतिभा को नई ऊँचाई दी है और इस प्रकार यह कहा जा सकता है–**''ज्वाला प्रचण्ड फैला सकती, एक छोटी सी चिनगारी भी।''**

❐❐❐

# आधी दुनिया की धमक

# आधी दुनिया की धमक

**श्रीमती कामिनी अग्रवाल**

**समीक्षा प्रकाशन**
**दिल्ली/मुजफ्फरपुर**

**ISBN : 978-81-87855-98-9**

**प्रथम संस्करण**
2012

**सर्वाधिकार ©**
**श्रीमती कामिनी अग्रवाल**

**प्रकाशक**
**समीक्षा प्रकाशन**
जे.के.मार्केट, छोटी कल्याणी
मुजफ्फरपुर (बिहार)–842 001
फोन : 09334279957, 09905292801
E-mail : samikshaprakashan@yahoo.com
www : samikshaprakashan.blogspot.com

**दिल्ली कार्यालय**
आर-27, रीता ब्लॉक
विकास मार्ग, शक्करपुर, दिल्ली–92
फोन : 09911478668

**शब्द-संयोजन**
**सतीश कुमार**

**मुद्रक**
बी०के० ऑफसेट,
शाहदरा, दिल्ली।

**मूल्य**
150.00 (एक सौ पचास रुपये)

**Aadhee Duniya Kee Dhamak**
**by Smt. Kamini Agrawal** **Rs. 150.00**

नारी-स्वतंत्रता, समानता और सम्मान
के लिए
अनवरत संघर्षरत समस्त महिलाओं को
समर्पित

महामहिम राष्ट्रपति श्री के.आर. नारायणन से पुरस्कार प्राप्त करती
श्रीमती कामिनी अग्रवाल